



अनुवाद प्रक्रिया

डॉ. शीतारानी पालीवाल

प्रतिकाल

कि.

निदेशक

उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान के सौजन्य से

अनुवाद प्रक्रिया

1847

अनुवाद प्रक्रिया



डॉ० रीतारानी पालीवाल
एम०ए० (हिंदी-अंग्रेजी), पी०एच०डी० (हिंदी)
रीडर
हिंदी विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय
मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली

ललित प्रकाशन, दिल्ली

पुस्तक संशोधन



(विश्व) विश्वविद्यालय, दिल्ली-110032

1997

पुस्तक संशोधन, दिल्ली-110032

विश्वविद्यालय, दिल्ली-110032

1997

© : डॉ० रीतारानी पालीवाल

प्रकाशक : ललित प्रकाशन

29/59-ए, गली नं० 11, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य : 125-00 रुपये

द्वितीय संस्करण : 1997

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

निवेदन

‘अनुवाद प्रक्रिया’ में मेरे पिछले तीन-चार वर्ष के लेख संकलित हैं। इन लेखों में समग्रता में अनुवाद की प्रक्रिया, प्रविधि एवं समस्याओं पर व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद की आवश्यकता देश-विदेश में प्राचीनकाल से लेकर अब तक लगातार महसूस की जाती रही है और आज तो इस कार्य की महत्ता असंदिग्ध है। नवीन ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान में अनुवाद की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मेरे मन में अनुवाद-कार्य के प्रति निष्ठा एवं समर्पण का भाव रहा है। ऐसी स्थिति में अनुवाद कार्य करते हुए जो धारणाएं मेरे मन में निर्मित होती रही हैं उन्हें ही इस पुस्तक में मुक्त रूप से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक अनुवाद के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का निरूपण करती है। व्यक्तिगत रूप से मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने मुझे सामग्री तथा संवाद से समृद्ध किया है।

जून, 1982

—रीतारानी पालीवाल

पुनश्च

अनुवाद प्रक्रिया का दूसरा संस्करण आपके हाथों में सौंपते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। पाठकों ने इस पुस्तक का जिस आदर से स्वागत किया है वह अनुवाद से संबंधित प्रश्नों और जटिलताओं से जूझने और उनका हल खोजने में मेरे लिए प्रेरणा का काम करता रहा है। अनुवाद से संबंधित मेरी अगली पुस्तक 'अनुवाद की सामाजिक भूमिका' इसी प्रेरणा का प्रतिफलन कही जा सकती है।

'अनुवाद प्रक्रिया' के पहले संस्करण में छपाई की कुछ खटकने वाली अशुद्धियां रह गई थीं, जिन्हें यथा संभव सुधारने का प्रयास इस संस्करण में किया गया है।

जुलाई 1992

—रीतारानी पालीवाल

15-ए, विश्वविद्यालय मार्ग, दिल्ली-9

विषय-सूची

अनुवाद क्या है ?	9
अनुवाद : प्रक्रिया और प्रकार—या प्रभेद	17
अनुवाद विज्ञान है अथवा कला ?	29
अनुवाद और भाषा विज्ञान	34
अनुवाद और अर्थ विज्ञान	39
अनुवाद तथा ध्वनि-विज्ञान	50
अनुवाद और वाक्य विज्ञान	55
काव्यानुवाद	69
नाट्यानुवाद	85
वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों का अनुवाद	92
लोकोक्तियों तथा मुहावरों का अनुवाद	96
अनुवाद की समस्याएं	103
अनुवाद क्यों ?	107

Index

101	Index
102	Index
103	Index
104	Index
105	Index
106	Index
107	Index
108	Index
109	Index
110	Index
111	Index
112	Index
113	Index
114	Index
115	Index
116	Index
117	Index
118	Index
119	Index
120	Index
121	Index
122	Index
123	Index
124	Index
125	Index
126	Index
127	Index
128	Index
129	Index
130	Index
131	Index
132	Index
133	Index
134	Index
135	Index
136	Index
137	Index
138	Index
139	Index
140	Index
141	Index
142	Index
143	Index
144	Index
145	Index
146	Index
147	Index
148	Index
149	Index
150	Index

अनुवाद क्या है ?

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ अनुवाद-कार्य का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। इस विस्तृत क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए अनुवाद-कार्य के लिए कहा जा सकता है किसी एक भाषा की ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी पाठ-सामग्री का दूसरी भाषा में भाषान्तर या पुनः कथन अनुवाद है। अनुवादक को अनुवाद-सामग्री को स्रोत भाषा (Source Language) से लक्ष्य-भाषा (Target Language) में सावधानी से पुनर्प्रस्तुत करना पड़ता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरण और पुनर्प्रस्तुत का यह कार्य एक चुनौती भरा काम होता है। यह कार्य तमाम कठिनाइयों और चुनौतियों से भरा हुआ इसलिए माना जाता है कि प्रत्येक भाषा एक भिन्न प्रकृति एवं परिवेश लेकर विकसित होती है। उसका संरचनात्मक गठन अपने स्वरूप और आयामों में दूसरी भाषा से भिन्न अर्थ-स्तर का होता है। एक भाषा से दूसरी भाषा की यह भिन्नता वाक्य, पद-बन्ध, वाक्य-रचना, ध्वनि, अर्थ-लय, शब्द-रूप, शब्द-गठन-विन्यास, रूप-विन्यास, अलंकार, छन्द, लोकोक्ति-मुहावरों के प्रयोग की विधि एवं सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अध्ययन से समझी-समझायी जा सकती है। प्रत्येक भाषा के इस निजी सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और प्रकृति परिवेशगत विशिष्टताओं के कारण अन्य किसी भाषा में पूरी तरह उसी तरह की समग्र अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो पाती है।

यह कार्य स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता और लक्ष्य-भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता पर भी निर्भर करता है कि दोनों भाषाओं में अपनी कितनी ताकत है। प्रायः लक्ष्य-भाषा में स्रोत-भाषा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को व्यक्त करने की क्षमता कम या ज्यादा रहती है। ऐसा होने के कारण अनुवाद कार्य में घपला खड़ा हो जाता है। लक्ष्य-भाषा में यदि स्रोत भाषा की शब्द-शक्तियों को पकड़ने की सही स्थिति न हुई तो भाषान्तर या व्याख्यात्मक आवृत्ति में बड़ा अनर्थ हो जाता है। शब्द और अर्थ के अनर्थ से बचने के लिए भारतीय वैयाकरणों ने अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना नामक शब्द-शक्तियों पर विस्तार से विचार किया है। तीनों शब्द-शक्तियों के सूक्ष्म भेद-प्रभेद को समझने के लिए इन तीन शब्द-शक्तियों के

अनेकानेक भेद उदाहरण देकर प्रस्तुत किए हैं। शब्द और अर्थ की पारस्परिकता, भिन्नता या स्वतंत्रता पर विचार करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि—‘योऽर्थः शब्दः सोऽर्थः, योऽर्थः स शब्दः’ इति। शब्दार्थ के शक्तिवाद के लिए वैयाकरणों ने शब्द-चतुष्टयवाद (जाति, गुण, क्रिया एवं यदृच्छा शब्द) का खुलकर पक्ष लिया है। अनुवाद के संदर्भ में शब्द-शक्तियों की दृष्टि से यह अपेक्षित होता है कि किसी भी बात को पढ़-सुनकर स्रोत-भाषा का व्यक्ति जो अर्थ ग्रहण करे, वही लक्ष्य-भाषा को पढ़-सुनकर भी ग्रहण करे या कर सके। अर्थ-ग्रहण के साथ बिम्ब-ग्रहण कराना भी भाषा का कार्य है और कथ्य को स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में अंतरित करते समय अनुवादक से चूक नहीं होनी चाहिए। लक्ष्य-भाषा में स्रोत-भाषा का समानार्थक अनुवाद सम्भव नहीं होता है, क्योंकि स्रोत-भाषा की अर्थ-ध्वनियां, नादात्मक इंकारें तथा अनुकरणात्मक और अनुरणनात्मक संगतियों में अभिव्यक्तिगत अन्तर होता है। इसीलिए स्रोत-भाषा के अर्थ को लक्ष्य-भाषा या तो बढ़ाती है या संकुचित करती है, या घटाती है या सन्दर्भ-च्युत कर देती है या एकदम भिन्नार्थक स्थिति में पहुंचा देती है। यही कारण है कि स्रोत-भाषा के अर्थ-सन्दर्भ को लक्ष्य-भाषा में ठीक वैसा का वैसा ला पाना सम्भव नहीं होता। अनुवादक सम्पूर्ण निष्ठा से दोनों के आस-पास की अर्थ-सम्भावनाओं से अर्थ उजागर करता है। अतः अनुवाद में समानार्थक नहीं, निकटार्थक स्थिति रहती है। अनुवाद एक प्रकार से समानता की कला न बनकर सम्भावनार्थक समझौते की कला है। स्रोत-भाषा के शब्दार्थ-सन्दर्भ से लक्ष्य-भाषा में अधिकाधिक सन्निकटता स्थापित कर लेने वाला अनुवादक ही सही और निष्ठावान कर्मी है। इसी कोण से अनुवाद में ‘सम्पूर्णता’ की मांग एक गलत नारा बनकर रह जाती है क्योंकि लक्ष्य-भाषा और स्रोत-भाषा के बीच काल-भेद, देश-भेद, जातीय-भेद आदि की दूरी या निकटता के प्रश्न का अनुवाद पर गहरा प्रभाव पड़ता है। शेक्सपियरियन ट्रेजेडी को आज बीसवीं शताब्दी में हिन्दी-अनुवाद करते समय यही समस्या रहती है, जिसे शेक्सपियर के नाटक ‘हेमलेट’ के कवि बच्चन द्वारा तथा ‘मैकबेथ’ के कवि रघुवीर सहाय द्वारा किए गए अनुवाद से समझा जा सकता है।

कोई व्यक्ति किसी भी ऐसे पाठ (Text) का अनुवाद नहीं कर सकता, जो उसकी पकड़ या समझ से बाहर हो। उसे विषय-वस्तु (Subject matter) विशेष की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। वह जिस भाषा से अनुवाद कर रहा है और जिसमें वह अनुवाद कर रहा है, उन दोनों की पर्याप्त पकड़ के साथ-साथ उसमें दोनों में सोचने-विचारने और गहन चिन्तन करने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए। इसमें कोश एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं, किन्तु वे विषय की समझ और चिन्तन की तर्क-शक्ति का स्थान नहीं ले सकते। यही कारण है कि नैसर्गिक प्रतिभा के धनी, शब्द-खोजी अनुवादकों द्वारा किया गया अनुवाद बेहतर होता है।

अनुवाद केवल स्रोत-भाषा के पाठ को लक्ष्य-भाषा के समानार्थकों द्वारा प्रतिस्थापित करना ही नहीं है, बल्कि अनेक ऐसे सन्दर्भों और सांस्कृतिक अर्थ-अभिप्रायों को लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करना भी है, जो लक्ष्य-भाषा की संस्कृति में मौजूद ही नहीं हैं। यह कठिनाई इसलिए प्रखरता से उत्पन्न होती है कि सांस्कृतिक अर्थ-अभिप्राय और अर्थ-गुच्छ स्रोत-भाषा में ठीक वैसे के वैसे उपलब्ध नहीं होते हैं। किसी बिन्दु पर इन्हें अभिव्यक्त करना असम्भव-सा लगने लगता है। कठिनाई का मूल तो यही होता है कि स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा में पूरी तरह समानता-परक या समान अभिव्यक्तियाँ उपलब्ध नहीं हो पातीं। इस स्थिति से बचने के लिए अनुवादक कभी-कभार 'शार्ट-कट' खोजता है। वह स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा में समानता लाने के चक्कर में स्रोत-भाषा के ऐसे प्रयोग भी लक्ष्य-भाषा में हू-ब-हू लाने की भयंकर भूल कर बैठता है, जो लक्ष्य-भाषा की अपनी प्रकृति में स्वाभाविक नहीं लगते। ऐसे अनुवादक लक्ष्य-भाषा की सहजता को नष्ट करते हुए, कृत्रिमता का संसार रचते रहते हैं। जैसे अंग्रेजी का एक वाक्य है—'The man, who does not see that the good of every living creature is his own good, is a fool.' 'वह आदमी, जो नहीं देखता कि प्रत्येक जीवधारी की भलाई उसकी अपनी भलाई है, मूर्ख है।' किन्तु यह हिन्दी का सहज वाक्य नहीं है। हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार यह वाक्य होना चाहिए : 'वह आदमी मूर्ख है जो प्रत्येक जीवधारी की भलाई में अपनी भलाई नहीं देखता।'

इन कठिनाइयों से बचने के लिए अनिवार्य है कि अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य-भाषा की प्रकृति और परिवेश, सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पीठिका का प्रामाणिक एवं गहरा ज्ञान हो।

अनुवादक से पाठक यह भी चाहता है कि अनूदित पाठ-सामग्री में अभिव्यक्ति की वैसी ही सुबोधगम्यता, प्राञ्जलता और प्रवाहमयता हो, जो मूल पाठ में मौजूद है। इसके साथ-साथ अनुवाद में शाब्दिक वास्तविकता और परिशुद्धता भी हो, जिसके न होने पर सम्पूर्ण पाठ ही अप्रामाणिक हो जाता है। अनुवाद में मूल सृजनात्मकता के समान सहजता और स्वाभाविक गत्यात्मकता हो जिससे मूल तथा अनुवाद की तुलना करने पर यह पता लगाना असम्भव-सा हो कि कौन-सा मूल है और कौन-सा अनुवाद। प्रत्येक अनुवादक को—चाहे वह साहित्यिक अनुवाद करता हो, या तकनीकी या वैज्ञानिक अनुवाद—इस तथ्य को स्वीकार करने में ननु नच नहीं करनी चाहिए।

अनुवाद के प्रश्न पर तीन कोणों में विचार किया जा सकता है—(1) अनूदित पाठ-सामग्री का पर्याप्त ज्ञान, (2) जिस भाषा में अनुवाद करना है, उसपर पर्याप्त अधिकार का प्रश्न, (3) इन दोनों के बीच की प्रक्रिया। अनुवाद की समस्या पर किए गए सभी अध्ययन इस बात को मानकर चलते हैं कि अनुवादक को पाठ-सामग्री

की ज्ञानात्मक चेतना, भाषा और संवेदना, संरचनात्मक गठन, पद-बन्ध, अन्तर्गठन, पदांशों की आवृत्ति, वाक्य-गठन आदि की सम्पूर्ण जानकारी हो। किन्तु सम्पूर्णता में यह ज्ञान इतनी आसान बात नहीं है जितनी लगती है।

यह एक स्वयंसिद्ध तथ्य है कि अनुवाद एक व्याख्यात्मक कला (Interpretative Art) है। किन्तु अनुवादक के साथ यह अजीब विरोधाभास है कि वह एक ऐसे माध्यम से कार्यरत व्याख्यात्मक कलाकार है जो उस मूल से, जिसे वह अपने शब्दों में प्रस्तुत करना चाहता है—समान भी है और भिन्न भी। अनुवादक अन्य कलाकारों की भांति मौलिक नहीं हो सकता, क्योंकि वह उन बिम्बों और शब्दों के माध्यम से कार्य करता है जो कलम की गई शाखा या प्रतिरोपित वृक्ष की भांति अपने जीवन के लिए ऐसे बीज के ऋणी होते हैं जिसे किन्हीं अन्य हाथों ने किसी अन्य स्थान पर रोपा है। प्रत्येक व्याख्यात्मक कलाकार की भांति अनुवादक का कार्य पराये सौन्दर्य-बोध को अपनी ज्ञानात्मक संवेदना में तादात्म्यीकृत करते हुए लक्ष्य भाषा में अन्तरित करने का है।

कलाकार की भांति अनुवादक भी आत्माभिव्यक्ति का इच्छुक होता है। वह भी पूरी साधना से पराए ढांचे में अपना अनुभव 'फिट' कर देना चाहता है। यह अनुभव ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, आत्मवृत्तान्तपरक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक या सांस्कृतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। अतः अनुवादक किसी भी प्रकार सर्जक से कम नहीं होता है और इसी अर्थ में अनुवाद को 'पुनर्सृजन' या 'पुनर्प्रस्तुतीकरण' कहा भी जाता है।

कुछ विद्वान यह भी कहते रहे हैं कि अनुवादक के पास अपना मौलिक कहने को कुछ नहीं होता। उसका कार्य ऐसा होता है कि जैसे पुरानी बोतल में रखी शराब को नयी बोतल में ढंग से पलट दिया जाए। अर्थात् अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक को कुछ नहीं करना होता क्योंकि पाठ-सामग्री परिवर्तन सम्भव नहीं है। किन्तु इस कथन में सच्चाई नहीं है क्योंकि एक बोतल से दूसरी बोतल में पलटते समय शराब फैल भी सकती है, उसका काफी अंश नष्ट भी हो सकता है। प्रश्न यह भी होता है कि पुरानी बोतल की चीज को सुरक्षित रखते हुए नई बोतल में कैसे समाहित किया जाए। कभी-कभार तो पुरानी बोतल की शराब से ही नई बोतल के टूट जाने का खतरा रहता है जैसे कि अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजी के कवि आलोचकों ने जब प्राचीन क्लासिकों की रचनाओं का अपनी भाषा में अनुकरण किया। तो वे 'रूप' (Form) को ही पकड़ पाए, वस्तु (Content) की भव्यता एवं गहनता उनके हाथ से खिसक गई।

तमाम बहसों में से एक बात उभरती है कि चाहे कोई कुछ भी कहे अनुवादक एक साहित्यिक कलाकार है जो अपने अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त रूप अपने से बाहर खोजता है। ऐसी स्थिति में यह दृष्टिकोण मूलतः गलत है कि

अनुवादक एक उथला कलामर्मज्ञ या खोखला रूपवादी (Empty Formalist) होता है या वह सर्जक या कवि नहीं है बल्कि मात्र उल्थाकार शब्द-शिल्पी है जिसके पास अपना कहने को कुछ नहीं होता। निश्चय ही उस श्रेणी के कुछ अनुवादक होते हैं, किन्तु वे उस क्षेत्र के आदर्श उदाहरण नहीं हैं। कुछ तथाकथित लेखक भी इसी श्रेणी के होते हैं लेकिन वे रचनाकार के मॉडल के रूप में स्वीकार नहीं होते। अनुवाद को हम चाहें तो साहित्यिक अनुकरण के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। अन्य भाषा की कविता अनुवादक के लिए एक 'मॉडल' बन जाती है और वह मात्र अनुकरण से प्रेरित नहीं होता बल्कि वैकल्पिक सादृश्य से प्रेरित होता है। वस्तु का आकर्षण उसे इतना आकृष्ट करता है कि वह अपनी वस्तु (Content) के अनुकूल रूप (Form) खोजकर तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस प्रकार वह एक ऐसे रूप के माध्यम से नियन्त्रित करता है जो सहज तो नहीं होता, किन्तु उसके अनुकूल होता है।

इस तरह अनुवाद मनोवैज्ञानिक रूप से एक आभ्यन्तरीकरण की प्रक्रिया है—पलायन की नहीं। कोई चाहे तो अनुवाद की इस प्रक्रिया और अनुभव को निर्व्यक्तीकरण के साथ तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया कह सकता है जिसे केवल भावनात्मक वस्तु के अन्तरण के रूप में ही नहीं समझा जाना चाहिए। अन्य भाषा की कविता केवल विषय मात्र ही नहीं होती है—बल्कि एक आर्केटाइप या आद्यरूप होती है जो भौतिकेतर या अमूर्त प्रभाव जागृत करती है।

अनुवाद के सिद्धान्त भाषाओं के बीच एक विशेष प्रकार के सम्बन्ध से संबद्ध होते हैं। परिणामस्वरूप अनुवाद को तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की एक शाखा भी कहा जाता है। अनुवाद-सिद्धान्त की दृष्टि से वर्णनात्मक और ऐतिहासिक सादृश्य के बीच भेद करना असंगत होगा। किन्हीं भी दो भाषाओं-बोलियों के बीच अनुवाद समानार्थकता (Translation Equivalence) खोजी जा सकती है और अनुवाद किया जा सकता है, भले ही वे स्थानिक, कालपरक, सामाजिक या अन्य किसी प्रकार से सम्बन्धित हों अथवा नहीं।

भाषाओं के बीच का सम्बन्ध सामान्य रूप से द्वि-दिशात्मक हो सकता है एवं यह आवश्यक नहीं है कि यह सम्बन्ध सदैव सन्तुलित ही हो। अनुवाद प्रक्रिया के रूप में तो एक-दिशात्मक होता है और उसकी प्रक्रिया सदैव एक निर्दिष्ट दिशा में होती है क्योंकि अनुवाद सदैव स्रोत-भाषा, जिसे कभी-कभी मूल भाषा भी कहा जाता है, से लक्ष्य-भाषा में किया जाता है। तीन प्रसिद्ध विद्वान अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार करते हैं।

डॉर्टेस्ट अनुवाद को अनुप्रयुक्त-भाषा विज्ञान की शाखा के रूप में परिभाषित करते हैं जो प्रतिमानित प्रतीकों के एक समूह से दूसरे समूह में अर्थ को अन्तरित करती है। "Translation is "that branch of applied science of

14 अनुवाद प्रक्रिया

language which is especially concerned with the problem—or the fact—of the transference of meaning from one set of patterned symbols...into another set of patterned symbols.”

जे० सी० केटफोर्ड ने अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार से की है—“अनुवाद स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा के समानार्थी पाठ में प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया है।” (The replacement of textual material in one language (S L) by equivalent textual material in another language (T L))

रेनाटो पोगिआलो ने कहा है कि ‘अनुवाद एक व्याख्यात्मक कला है।’ (Translation is an interpretative art.)

इन तीन परिभाषाओं के प्रकाश में चौथी परिभाषा हम इस प्रकार से कर सकते हैं कि—

‘स्रोत-भाषा में व्यक्त प्रतीक-व्यवस्था को लक्ष्य-भाषा की सहज प्रतीक-व्यवस्था में रूपांतरित करने का कार्य अनुवाद है।’

इस परिभाषा में कुछ तथ्यों पर ध्यान देने की अपेक्षा है।

- (1) स्रोत-भाषा में व्यक्त प्रतीकों और विचारों पर ध्यान की केन्द्रीयता।
- (2) एक भाषा की प्रतीक-व्यवस्था को दूसरी भाषा की प्रतीक-व्यवस्था में सावधानी से भाषान्तर करने का प्रयास।
- (3) अनुवाद की प्रतीक-व्यवस्था में स्रोत-भाषा की सहजता-स्वाभाविकता को लक्ष्य-भाषा में लाने का प्रयत्न।

(4) रूपान्तरण-कार्य की शक्तिवत्ता और गुणवत्ता।

(5) भाषागत प्रतीक-व्यवस्था (ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था) की अर्थ-सन्दर्भों, प्रसंगों तथा अर्थ-अनुषंगों में सही आवृत्ति।

अनुवाद-कर्म में मूल पाठ-सामग्री पर ध्यान को केन्द्रित करना अत्यन्त आवश्यक है। स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को सम्पूर्णता में थाहे बिना लक्ष्य-भाषा के समकक्षों द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। सच बात तो यह है कि अनुवाद सही प्रतीकों का लक्ष्य-भाषा में प्रतिस्थापन कार्य ही है। भाषा के अनेक स्तरों पर पाठ सामग्री को असमानार्थी लक्ष्य-भाषा सामग्री द्वारा प्रतिस्थापन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक बार ऐसा भी हो सकता है कि कुछ भी प्रतिस्थापित नहीं किया जाए, बल्कि स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा में सीधे अन्तरित कर दिया जाए।

स्पष्ट रूप में ‘समानार्थी शब्द’ एक संकेत शब्द (Key Term) है। अनुवाद-प्रक्रिया की मूलभूत समस्या स्रोत-भाषा में अनुवाद-समानार्थी खोजने की है।

अनुवाद-सिद्धान्त का केन्द्रीय कार्य अनुवाद-समानार्थकता के स्वरूप और स्थिति को परिभाषित करना है।

अनुवाद-कर्म में हमें ध्यान देकर दो चीजों के बीच का पार्थक्य समझना होगा। यह पार्थक्य स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के समानार्थक शब्दों को ध्यान में रखकर समझा जा सकता है। क्योंकि एक ओर तो हम अनुवाद-प्रक्रिया की समानार्थकता को अनुभवजन्य तथ्य के एक परिवेश से दूसरे में ग्रहण करते हैं और दूसरी ओर अनुवाद-प्रक्रिया में अन्तर्निहित स्थितियों या औचित्य को थाहते रहते हैं। इस दृष्टि से अनुवाद-प्रक्रिया में अनुवादक का पूरा ध्यान अनुवाद के समानार्थक शब्दों पर होना चाहिए। ऐसा न होने से अनुवादक अपने लक्ष्य से च्युत हो जाता है।

हमें सामान्य सादृश्य तथा पाठ-समानार्थकता के मध्य निहित रहने वाले पार्थक्य पर भी ध्यान देना होगा। प्रायः इन पर ध्यान न देने से दोनों का पार्थक्य स्पष्ट नहीं हो पाता है। किसी लक्ष्य-भाषा की पाठ-समानार्थकता में वह पाठ भी विशिष्ट ध्यान की अपेक्षा करता है जिसे विशिष्ट स्थितियों में प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि उसे स्रोत-भाषा के समानार्थक शब्दों के पाठ या पाठश के मूलार्थ को सही स्थितियों में ग्रहण करना होगा। लक्ष्य-भाषा का सामान्य सादृश्य (जिसमें भाषिक संरचना करना, वाक्य-रचना, पद-बन्ध, अर्थ प्रक्रिया आदि संरचनात्मक तत्त्व होते हैं) अधिकाधिक निकटता से ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट संरचनात्मक प्रकृति होती है। इसलिए अनुवाद के दौरान भाषा की प्रकृति को कायम रखने का प्रयास करना होता है। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि सामान्य सादृश्य सदैव सन्निकटता का कार्य करें।

पाठ-समानार्थकता तथा बाहरी सादृश्य (Formal Correspondence) में भी अन्तर किया जाना चाहिए। पाठ-समानार्थक स्रोत-भाषा के पाठ या पाठ के किसी भी अंश के समकक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया लक्ष्य-भाषा या लक्ष्य-भाषा के पाठ का कोई भी अंश होता है। दूसरी ओर बाहरी सादृश्य लक्ष्य-भाषा का कोई भी प्रवर्ग (इकाई, वर्ग, संरचना या संरचना का घटक आदि) होता है, जो लक्ष्य-भाषा की व्यवस्था में यथासम्भव वही स्थान प्राप्त करता है, जो दिए गए स्रोत-भाषा प्रवर्ग को स्रोत-भाषा में प्राप्त है। प्रत्येक भाषा अन्ततोगत्वा अद्वितीय है, उसके प्रवर्गों को भाषा के भीतर उनके सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही परिभाषित किया जाता है। अतः बाहरी सादृश्य सदैव स्थूल अनुमानाश्रित होता है।

इस प्रकार पाठगत अनुवाद समानार्थक लक्ष्य-भाषा का कोई भी वह रूप होता है जो स्रोत-भाषा के रूप के समकक्ष के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

पाठ-समानार्थक को खोजना अनुवाद की दो भाषाओं की गहरी जानकारी और भाषा की अधिकार-क्षमता पर निर्भर रहता है।

16 अनुवाद प्रक्रिया

पाठगत अनुवाद समानार्थक लक्ष्य-भाषा पाठ का वह अंश होता है जिसे तभी परिवर्तित किया जा सकता है, जब स्रोत-भाषा पाठ के समकक्ष अंश को परिवर्तित किया जाए। जैसे—‘मेरा बेटा आठ साल का है।’ इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ—‘My son is eight years old.’। यहां पर ‘मेरा बेटा’ का पाठ समानार्थक हुआ—‘My son’। लेकिन जब मूल पाठ या स्रोत-भाषा के पाठ में अन्तर करेंगे ‘तुम्हारी बेटी आठ साल की है,’ तभी लक्ष्य-भाषा का पाठ समानार्थक बदल जाएगा—‘Your daughter is eight years old।’ यहां यह बदलाव तभी आया है जब हमने स्रोत-भाषा के पाठ में परिवर्तन किया है।

लम्बे पाठ के अनुवाद के दौरान प्रायः प्रयुक्त होने वाले स्रोत-भाषा के शब्दों के लक्ष्य-भाषा में समानार्थक अक्सर एक से अधिक हुआ करते हैं। सन्दर्भ एवं प्रसंग के अनुसार भी उनमें अर्थ-भेद हो जाना स्वाभाविक है। कारण, किसी भी शब्द का कोई भी शब्द अन्तिम समानार्थी शब्द नहीं माना जा सकता। अनुवाद-समानार्थकता की सम्भावनाओं के आधार पर शब्दों को खोजने का प्रयास करते हैं, जिसमें सीमाओं को बचाया जा सकता है।

अनुवाद उसी स्थिति में अनुवाद कहा जा सकता है, जब स्रोत-भाषा का सम्पूर्ण सन्दर्भ और प्रसंग लक्ष्य-भाषा में व्याख्यात्मक आकृति पाने पर भी स्रोत-भाषा से दूर न जा पड़े क्योंकि अपने समग्र रूप में अनुवाद एक भाषा के भाव एवं विचारगत प्रतीकों का अन्य भाषा के भाव एवं विचारपरक प्रतीकों में प्रतिस्थापन है।

अनुवाद : प्रक्रिया और प्रकार या प्रभेद

सामान्य रूप से यह माना जाता है कि अनुवाद में भी मौलिक सृजनात्मकता की भांति प्रातिभ कलात्मकता और शिल्पगत दक्षता के साथ-साथ व्यापक भाषिक संरचनात्मक अन्विति का प्रयास अपेक्षित होता है। विद्वान मौनिन (Mounin) का यह कथन आज के सन्दर्भ में काफी सटीक माना जा सकता है, 'जागरूक अनुवादक के लिए भाषिक दक्षता ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे एक कुशल नृत्य-शास्त्री भी होना चाहिए।' तात्पर्य यह है कि उसमें भाषिक अनुवाद मात्र से सन्तुष्ट न होकर स्रोत-भाषा की तहों में जाने की दक्षता होनी चाहिए। उसे भाषा की गहनतम पकड़ के साथ मानव-स्वभाव के मनोविज्ञान की अन्तर्ज्ञानात्मक पकड़ होनी चाहिए।

अनुवाद चाहे वैज्ञानिक हो अथवा साहित्यिक, उसमें सृजनात्मकता की प्रक्रिया हर स्थिति में अन्तर्निहित रहती है। वस्तुतः अनुवाद विषय की जटिलता, दुर्बोधता तथा स्रोत और लक्ष्य-भाषा में अर्थ-तत्त्व-सम्बन्धी सहसम्बन्धों से अनपेक्ष स्रोत-भाषा में प्रस्तुत सामग्री की सम्पूर्ण विवरणों और उसमें निहित स्पष्ट-अस्पष्ट संकेतार्थों का लक्ष्य-भाषा में लिपिबद्ध—पुनर्प्रस्तुतीकरण है। ऐसा करने के लिए सर्वप्रथम विषय (Subject) को भलीभांति समझा जाना चाहिए। किसी भी अभिलिखित पाठ में तीन बातों पर ध्यान दिया जाता है :

- (1) लेखक ने क्या कहा ?
- (2) लेखक ने जो कहा है, उसके बारे में वह क्या सोचता है ?
- (3) उसने जो कहा है, उसके बारे में पाठक क्या सोचता है ?

यह तीनों बातें तकनीकी अनुवाद के सन्दर्भ में भी विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए। क्योंकि अनुवादक अनुवाद के माध्यम से पाठकों के समक्ष एक नवीन एवं जटिल जानकारी को सम्प्रेषणीय बनाता है। वास्तविक जानकारी को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने के लिए लेखक के 'आधार वाक्य', उसके आगमनात्मक (Inductive) और निगमनात्मक (Deductive) तर्कों और उसके निष्कर्षों को

18 अनुवाद प्रक्रिया

समग्र रूप में समझने का प्रयास करते हुए अनुवादक को लेखकीय सन्दर्भ में भाषान्तरित करना चाहिए।

व्यावहारिक प्रयोजन से उसे उस आयाम में प्रवेश करना चाहिए जहाँ से लेखक ने अपने कच्चे माल के लिए सूचना प्राप्त की है। केवल तभी वह इस जानकारी को लक्ष्य-भाषा के भाषिक और पारिभाषिक समकक्षों में सुसंगत रूप में पुनर्प्रस्तुत कर सकेगा। एक दृष्टि से सम्पूर्ण अनुवाद-प्रक्रिया का यही आधारभूत सिद्धान्त है। व्यक्तिगत क्षमता, विषयगत अभिज्ञान, कार्य करने का वैयक्तिक स्वभाव, विषय के स्वरूप तथा स्रोत और लक्ष्य-भाषा में प्रवाह-क्षमता आदि तत्त्व इसके बाद ही आते हैं।

अनुवाद-सम्बन्धी कोई मानक प्रक्रिया-निर्धारण करना उतना ही कठिन काम है जितना कि संगीतकला, चित्रकला या काव्यकला पर कोई नियम-पुस्तिका लिखना। साथ ही यह कहना कि इन नियमों का पालन नौसिखियों तथा आचार्यों द्वारा समान रूप से किया जायेगा। फिर भी प्राकृतिक अभिमत की दृष्टि से अनुवाद-प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त निर्मित किए जा सकते हैं—

(1) अनुवाद करते समय एक-एक पैराग्राफ पढ़कर अनुवाद करते जाने के बजाय सम्पूर्ण स्रोत-भाषा से समग्रता में परिचय बेहतर होगा। ऐसा करने से अनुवाद में मानसिक क्रमबद्धता, एकरूपता तथा सुबोधगम्यता आयेगी।

(3) किसी भी नयी जटिल, अपरिचित पाठ-सामग्री पर अनुवाद कार्य आरम्भ करने से पहले स्रोत-भाषा में उसके नवीनतम ग्रन्थ-सूचीपरक सन्दर्भों को खोज लिया जाना चाहिए जिससे कि ऐसे सन्दर्भों से पारिभाषिक समस्याओं का समाधान किया जा सके। यदि लक्ष्य-भाषा में प्रत्यक्ष सन्दर्भ उपलब्ध नहीं हो पाते तो विश्वकोशों तथा विषय से सम्बन्धित कोशों से सहायता लेनी चाहिए। यह सब करने पर भी यदि कोई समस्या रह जाती है तो उस विषय के विशेषज्ञों से परामर्श लेना उचित होगा।

(3) नये शब्दों, तकनीकी मुहावरों, वैज्ञानिक क्षेत्र की शब्दावली, व्यावसायिक नामों, उत्पादों, संघटनात्मक, संकल्पनापरक, पारिवर्णी शब्दों (Acronym) के दोनों भाषाओं में समकक्षों को अन्योन्य सन्दर्भों के साथ सूचीबद्ध रूप में रखना चाहिए। इन सूचियों को समय-समय पर अद्यतन बनाया जाना चाहिए। ऐसा करने से विभिन्न विषयों की नवीनतम शब्दावली अनुवादक के पास हर समय मौजूद रहेगी।

(4) समसामयिक पुस्तकों, निबन्धों, पत्र-पत्रिकाओं के अनुवाद के सम्बन्ध में यदि स्वयं लेखक से सम्पर्क स्थापित किया जाए तो अनुवाद प्रामाणिक तथा बेहतर होने की सम्भावना बढ़ जाती है। क्योंकि तकनीकी वैज्ञानिक एवं साहित्यिक विषयों के अनुवाद या प्रकाशन के बारे में लेखक को पता चलता है, तो वह सामान्य रूप

से—हर सम्भव जानकारी के माध्यम से—उसे अद्यतन बनाने की कोशिश करता है।

(5) अनुवादक का प्रयास होना चाहिए कि वह स्रोत-भाषा की सामग्री से तादात्म्यीकरण स्थापित करने का हर सम्भव प्रयास करे। तदुपरान्त उसे लक्ष्य-भाषा में निर्वैयक्तिकता के साथ पुनर्सृजित करने में भरसक शक्ति लगा देनी चाहिए। लक्ष्य-भाषा सदैव उसकी अपनी ही भाषा नहीं होती। अनेक बार वह अपनी भाषा से विदेशी भाषा में अनुवाद करता है और ऐसा करते समय उसे विचार के एकदम भिन्न क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है। यह विचार-क्षेत्र उसके अपने जीवन-ढंग, रहन-सहन, आचार-विचार-व्यवहार आदि सभी से अपरिचित एवं विलक्षण होता है। ऐसा करते समय उसे कभी-कभी बहुत सूक्ष्म विचारों और धारणाओं को अत्यधिक सावधानी से अन्तरित करना होता है। इसीलिए तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया की अनुवाद में बड़ी भूमिका होती है।

(6) जिस भाषा की सामग्री का अनुवाद करना है तथा जिस भाषा में अनुवाद करना है, उसकी परिस्थितिजन्य स्थितियों का संज्ञान अनुवादक को प्राप्त करना चाहिए क्योंकि भाषा का स्वरूप परिवेशबद्ध होता है।

(7) भाषागत सांस्कृतिक सन्दर्भों की जानकारी प्रत्येक अनुवादक को अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। साहित्यिक और मानविकी से सम्बन्धित विषयों के अनुवाद में तो यह एकदम अनिवार्य है क्योंकि सांस्कृतिक संघर्ष और द्विविधाएं भाषा पर विशेष छाप डालती हैं। यह एक ऐसी दुर्निवार स्थिति है जिसे बचाया नहीं जा सकता।

अनुवाद के प्रकार

स्थूल रूप से अनुवाद के बहुत से प्रकार या भेद किए जा सकते हैं। किन्तु इसके प्रमुख तीन आधार हैं—(1) सीमा, (2) स्तर, (3) श्रेणी या पदक्रम।

1. सीमा के आधार पर अनुवाद के दो भेद किए जा सकते हैं :

(क) पूर्ण अनुवाद (Full translation)

(ख) आंशिक अनुवाद (Partial translation)

(क) पूर्ण अनुवाद—पूर्ण अनुवाद में सम्पूर्ण अन्वय-सामग्री का अनुवाद किया जाता है। स्रोत-भाषा के पाठ का प्रत्येक भाग लक्ष्य-भाषा में लाया जाता है।

(ख) आंशिक अनुवाद—आंशिक अनुवाद में स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री के कुछ अंशों का अनुवाद न करके उन्हें लक्ष्य-भाषा के पाठ में सीधे अन्तरित कर दिया जाता है। साहित्यिक अनुवाद में ऐसा प्रायः किया जाता है। कभी-कभी जब स्रोत-भाषा के किसी पद को अननुवाद्य समझा जाता है तब या फिर स्थानीय

20 अनुवाद प्रक्रिया

पृष्ठभूमि या स्थानिक विशेषता लाने के प्रयोजन से उन्हें लक्ष्य-भाषा में ज्यों का त्यों ले लिया जाता है।

2. भाषिक स्तर के आधार पर अनुवाद के प्रकार

भाषिक स्तर के आधार पर अनुवाद के दो भेद किए जा सकते हैं—

(क) समग्रता में अनुवाद (Total translation)

(ख) निर्बद्ध अनुवाद (Restricted translation)

(क) **समग्रता अनुवाद**—इस प्रकार के अनुवाद में स्रोत-भाषा पाठ को सभी स्तरों पर प्रतिस्थापित किया जाता है। स्रोत-भाषा के व्याकरण और शब्दावली को भी लक्ष्य-भाषा के व्याकरण और शब्दावली के समकक्षों द्वारा सम्पूर्णता में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

(ख) **निर्बद्ध अनुवाद**—इस प्रकार के अनुवाद में स्रोत-भाषा के पाठ को लक्ष्य-भाषा के पाठ के समानार्थक पाठ द्वारा केवल एक स्तर पर प्रतिस्थापित किया जाता है। इसमें अनुवाद स्वर-विज्ञान या लिपि-वैज्ञानिक या व्याकरण या शब्द-विज्ञान के आधार पर किया जाता है। लिपि-वैज्ञानिक अनुवाद को लिप्यन्तरण नहीं समझा जाना चाहिए। क्योंकि लिप्यन्तरण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें स्वर-विज्ञानपरक अनुवाद तथा स्रोत और लक्ष्य-भाषा में स्वर-विज्ञान और लिपि-विज्ञान का परस्पर सम्बन्ध शामिल होता है। लिप्यन्तरण में स्रोत-भाषा की लिपि-विज्ञान-परक इकाइयों को तदनु रूप स्वर-विज्ञानपरक इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है और फिर इन स्रोत-भाषा की स्वर-विज्ञानपरक इकाइयों को उनके समकक्ष लक्ष्य-भाषा की स्वर-विज्ञानपरक इकाइयों में अन्तर्लित कर दिया जाता है और अन्त में यह लक्ष्य-भाषा की स्वर-विज्ञानपरक इकाइयां तदनु रूप लिपि-विज्ञानपरक इकाइयों में प्रतिस्थापित की जाती हैं।

3. श्रेणी या पद-क्रम के आधार पर अनुवाद के प्रकार

इस प्रकार का अनुवाद व्याकरणिक या स्वर-वैज्ञानिक पदक्रम के क्रम के आधार पर स्थापित किए गए अनुवाद समानार्थकों से सम्बन्धित है, प्रायः इसे क्रमबद्ध अनुवाद भी कहा जाता है। मुक्त अनुवाद (Free translation), शब्दानुवाद (Literal translation), शब्दशः अनुवाद (Word for word translation) भी आंशिक रूप से इसी से सम्बन्धित हैं।

(क) **मुक्तानुवाद**—यह अनुवाद सदैव अवद्ध होता है। प्रायः यह अनुवाद शब्द के स्तर पर क्रमबद्धता की बंदिश नहीं मानता।

(ख) **शब्दानुवाद**—मुक्तानुवाद और शब्दशः अनुवाद के बीच की श्रेणी को शब्दानुवाद कहते हैं। यह शब्दशः अनुवाद से प्रारम्भ होता है। किन्तु लक्ष्य-भाषा

के व्याकरण के अनुरूप इसमें परिवर्तन कर लिये जाते हैं अर्थात् अतिरिक्त शब्द जोड़ दिए जाते हैं और संरचना किसी भी क्रम से बदल सकती है।

(ग) शब्दशः अनुवाद—यह शब्दानुवाद से आंशिक रूप से संबद्ध होता है। यह स्रोत-भाषा पाठ में लक्ष्य-भाषा के अनुरूप किसी परिवर्तन को स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः यह शब्द के स्तर पर क्रमबद्ध अनुवाद होता है।

उपर्युक्त भाषा-वैज्ञानिक आधार के अतिरिक्त अन्य आधारों पर भी अनुवाद के भेद या प्रकार कर सकते हैं। इनमें से प्रमुख आधार इस प्रकार हैं:

(1) वाङ्मय, (2) गद्य-पद्य, (3) विधा, (4) विषय, (5) अनुवाद-प्रकृति।

1. वाङ्मय के आधार पर दो भेद हैं

(क) ज्ञान के साहित्य का अनुवाद

(ख) शक्ति के साहित्य का अनुवाद।

(क) ज्ञान के साहित्य (Literature of knowledge) के अन्तर्गत भौतिकी, वनस्पति विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, विधि, सामाजिक विज्ञान आदि जैसी ज्ञान की विभिन्न धाराओं को अनूदित करने का कार्य किया जाता है। वैज्ञानिक अनुवाद के अन्तर्गत इसी प्रकार का कार्य विश्व भर में तेजी से हो रहा है।

(ख) शक्ति के साहित्य (Literature of power) के अन्तर्गत तमाम भावाश्रित साहित्य आता है। मानव का समस्त लालित्य-बोधीय कार्य, जिसमें ललित कलाओं की स्थिति प्रमुख है—इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। कविता-कहानी-नाटक का अनुवाद इसी ललित साहित्य के अनुवाद का एक प्रमुख अंग है।

2. गद्य-पद्य के आधार पर

(क) पद्यानुवाद—प्रायः इसमें मूल पद्य का अनुवाद पद्य में ही किया जाता है। जैसे कालिदास के 'मेघदूत' के अनेक अनुवाद होते रहे हैं। शेक्सपियर के 'हेमलेट' या 'मैकबेथ' के तमाम काव्यानुवाद इसी श्रेणी में आते हैं। कभी-कभार तो पद्य का पद्य में अनुवाद करते समय छन्द को ही आधार बना लिया जाता है। यद्यपि यह अनिवार्य नहीं है तथापि छन्द का थोड़ा-सा ध्यान रखना भी पड़ता है। पद्य से पद्य के अनुवाद को ही पद्यानुवाद कहते हैं। शब्द-लय तथा अर्थ-लय के अनुकरण पर इस प्रकार का अनुवाद आधारित होता है।

(ख) गद्यानुवाद—प्रायः पद्य का अनुवाद पद्य में और गद्य का अनुवाद गद्य में ही किया जाता है। प्रेमचन्द के प्रख्यात उपन्यास 'गोदान' के अंग्रेजी आदि कई भाषाओं में गद्यानुवाद हुए हैं। किन्तु गद्य से गद्य में पद्य का पद्य में ही अनुवाद करने का कोई रूढ़ नियम नहीं है परन्तु स्थिति और अवसर को देखते हुए पद्य का अनुवाद गद्य में किया जा सकता है, किया जाना चाहिए। जैसे कवि नागार्जुन द्वारा

22 अनुवाद प्रक्रिया

कालिदास के 'मेघदूत' का गद्यानुवाद। अनुवादक चाहे तो गद्य का पद्य में भी अनुवाद कर सकता है। ऐसे उदाहरण बिरले ही मिलते हैं कि गद्य का पद्य में अनुवाद हुआ है।

(ग) छन्दबद्ध अनुवाद—जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह अनुवाद मूल पाठ के छन्द में ही किया जाता है। जैसे अंग्रेजी के Sonnet का अनुवाद करते समय उसके 11 वर्णों और 14 पंक्तियों में उसकी स्वतः पूर्ण विषय-विचार शृंखला को ढोने का प्रयास किया जाए। अंग्रेजी के अधिकांश 'सॉनेट' Petrarch की भांति दो चतुष्पदियों और दो त्रिपदियों या स्पेंसर और शेक्सपियर की भांति तीन चतुष्पदियों और एक युग्मक में रचित है। अनुवादक को उनकी इस छन्द-कला का ध्यान रखना होगा। अगर इसी आधार पर अनुवाद किया जाता है, तो इस प्रकार के अनुवाद को छन्दबद्ध अनुवाद कहते हैं।

(घ) छन्दमुक्त अनुवाद—इसमें अनुवादक स्रोत-भाषा के पाठ के छन्द-बन्धन में न बंधकर लक्ष्य-भाषा में प्रचलित किसी भी छन्द को अपना लेता है। जैसे कालिदास का 'मेघदूत' संस्कृत के मन्दाक्रान्ता छन्द में है। किन्तु डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने इसका अनुवाद मुक्त छन्द में किया है। कवि पोप के प्रसिद्ध काव्य 'Essay on Criticism' का अनुवाद कविवर पं० जगन्नाथदास रत्नाकर ने हिन्दी के रोला छन्द में 'समालोचनादर्श' नाम से किया है।

3. विधा के आधार पर

(क) काव्यानुवाद—इस प्रकार का अनुवाद गद्य या पद्य में से किसी का भी हो सकता है। यों तो प्रायः काव्य का अनुवाद काव्य में ही किया जाता है। हिन्दी में संस्कृत काव्यों को काव्य में अनूदित करने की एक समृद्ध परम्परा रही है। भारतेन्दु-युग में लाला सीताराम ने कालिदास के 'रघुवंश' का अनुवाद दोहा-चौपाइयों में किया। श्रीधर पाठक ने कालिदास के 'ऋतुसंहार' का अनुवाद ब्रज-भाषा के सवैया छन्द में किया। यह लगातार कहा जाता रहा है कि काव्यानुवाद हो ही नहीं सकता, किन्तु ऐसा लगता है कि अनुवादकों ने इस कथन की कभी परवाह नहीं की। प्राचीन परम्परा से इस बात के पर्याप्त प्रमाण दिए जा सकते हैं कि काव्यानुवाद बड़ी लगन से किए जाते रहे हैं। यह काव्यानुवाद निबद्ध तथा अनिबद्ध काव्य के दोनों रूपों का हुआ है। यूनानी कवि होमर के विकसनशील महाकाव्य 'इलियड' के विश्वभर में तमाम काव्यानुवाद हुए हैं।

(ख) नाट्यानुवाद—विश्व-भर में नाट्यानुवाद की एक समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है। हिन्दी में आधुनिक काल के आरंभ से ही नाटकों का अनुवाद शुरू हो गया था। गोपीनाथ एम० ए० ने सन् 1950 में शेक्सपियर के तीन नाटकों के हिन्दी में अनुवाद किए। उन्होंने 'Romeo and Juliet' 'As You

Like It' तथा 'Merchant of Venice' का अनुवाद किया। मथुरा प्रसाद चौधरी ने 'मैकवेथ' का साहसेन्द्र साहस' नाम से अनुवाद किया। कवि बच्चन तथा अमृतराय ने 'हेमलेट' तथा 'मैकवेथ' का अनुवाद किया। कवि रघुवीर सहाय ने 'मैकवेथ' का पुनः 'वरनम वन' नाम से अनुवाद किया है।

स्वयं भारतेन्दु ने संस्कृत के 'मुद्राराक्षस' का तथा राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का हिन्दी में अनुवाद किया। हवीव तनवीर ने 'मृच्छ-कटिकम्' का 'मिट्टी की गाड़ी' के रूप में अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त नाट्य रूपान्तर (कहानी-उपन्यासादि के) इस दौर में अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं जैसे विष्णु प्रभाकर द्वारा 'गोदान' का 'होरी' नाम से नाट्य-रूपान्तर। मुकितबोध की लम्बी कविताओं के नाट्य-रूपान्तर।

नाटक का सम्बन्ध रंगमंच से होने के कारण इस तरह के अनुवादों में अनेक प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयां सामने आती हैं। यदि रंगमंच की बुनियादी मांगों को पूरा करने में कोई नाट्य-रूपान्तर असफल हो जाता है तो यह नाट्य-रूपान्तरकार की भारी असफलता है। इसलिए नाटक के अनुवादक तथा नाट्य-रूपान्तरकार का रंगमंच से जुड़ा होना निहायत जरूरी है। रंगमंच के व्यावहारिक ज्ञान के बिना नाट्यानुवाद सफलता से किया ही नहीं जा सकता।

(ग) कथानुवाद—कथा-साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास-कहानी आदि को स्थान दिया जाता है। कहानियों तथा उपन्यासों का अनुवाद काव्यानुवाद की तुलना में अपेक्षाकृत सरल होता है। साथ ही ये अनुवाद ज्यादा प्रचलित एवं लोकप्रिय भी हैं। टालस्टाय के उपन्यास 'War and Peace' के अनेक भाषाओं में हुए अनुवाद काफी लोकप्रिय हुए हैं। अज्ञेय ने जैनेन्द्र के प्रख्यात उपन्यास 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में 'The Resignation' नाम से सफल अनुवाद किया है। हिन्दी में भारतीय भाषाओं के हजारों उपन्यास सफलता से अनूदित हुए हैं। जिनमें सर्वाधिक संख्या बंगला से हिन्दी अनुवादों की है। संस्कृत की कहानियों—'पंचतन्त्र' या 'कथा-सरित्सागर' के विदेशी भाषाओं में सैकड़ों अनुवाद हुए हैं। इस प्रकार कथानुवाद के क्षेत्र में अनुवादक का योगदान उल्लेखनीय रहा है।

(घ) अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवाद—निबन्ध, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण आदि के अनुवाद बहुत समय से प्रचलित हैं। स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बेकन के निबन्धों का अनुवाद 'बेकन विचार-रत्नावली' के नाम से हिन्दी में किया। गांधीजी की 'आत्मकथा' के अनेक भारतीय भाषाओं में अच्छे अनुवाद किए गए हैं।

4. विषय के आधार पर

विषय के आधार पर अनुवाद के अनेक भेद किए जा सकते हैं—

24 अनुवाद प्रक्रिया

- (क) ललित साहित्य का अनुवाद
- (ख) धार्मिक-पौराणिक साहित्य का अनुवाद
- (ग) वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद
- (घ) गणित का अनुवाद
- (च) प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद
- (छ) अभिलेखों, गजेटियरों आदि का अनुवाद
- (ज) पत्रकारिता से सम्बन्धित विषयों का अनुवाद
- (झ) सामाजिक विज्ञान के विषयों का अनुवाद
- (ट) काव्यशास्त्र तथा भाषा-वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित अनुवाद

5. अनुवाद-प्रकृति के आधार पर

अनुवाद-प्रकृति के आधार पर भी अनेक भेद-प्रभेद किए जा सकते हैं—

(क) **शब्दानुवाद**—शब्दानुवाद शब्द का प्रयोग यहां Verbal और Literal translation के मिले-जुले अर्थ में किया जाता रहा है। प्रायः शब्दानुवाद और शब्दशः अनुवाद को एक मानने की भूल हो जाती है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि शब्दानुवाद में स्रोत-भाषा के प्रत्येक शब्द पर अनुवादक को ध्यान रखना पड़ता है और शब्दशः अनुवाद में शब्द के स्तर पर क्रमबद्ध अनुवाद की ओर ध्यान दिया जाता है। शब्दानुवाद का तात्पर्य यह नहीं है कि स्रोत-भाषा की वाक्य-व्यंजना के ढंग से लक्ष्य-भाषा की वाक्य-व्यंजना की जाए। 'will he go' का अनुवाद 'करेगा वह जाना' वस्तुतः कोई अनुवाद नहीं हुआ क्योंकि अंग्रेजी की वाक्य संरचना को हिन्दी वाक्य संरचना के सांचे में नहीं ढाला गया। बल्कि शब्दानुवाद से तात्पर्य यह लिया जाना चाहिए कि मूलपाठ में कही गई प्रत्येक बात को लक्ष्य-भाषा में ढंग से अन्तरित किया जाए। गणित, विधि जैसे विषयों में ऐसा अनुवाद आवश्यक होता है, क्योंकि वहां कुछ भी छूट जाने या कुछ भी जोड़ दिए जाने से, भयंकर भूलें हो जाने की सम्भावना रहती है। शब्दानुवाद करते समय सर्वाधिक सावधानी इस बात की रखनी पड़ती है कि भाषा में बोधगम्यता, सम्प्रेषणीयता और प्रवाह रहे। पत्र-पत्रिकाओं आदि में अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद करते समय कई बार इस प्रकार की गलतियां रह जाती हैं और भाषा हास्यास्पद भी लगने लगती है।

शब्दानुवाद घातक इस अर्थ में होता है कि स्रोत-भाषा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थध्वनियों और भाव की विशिष्ट भंगिमाओं को पकड़ने में अनुवादक प्रायः असमर्थ रह जाता है। इसलिए स्रोत-भाषा का मूलार्थ अपनी अनुगूँज में लक्ष्य-भाषा में गड़बड़ा जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यंजना-प्रधान सामग्री का अनुवाद करता है तो शब्दानुवाद से काम नहीं चलता। शब्दानुवाद करते समय अनुवादक लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ के स्तरों को नहीं पकड़ पाता। ऐसा अनुवाद अर्थ विहीन हो

जाता है। जैसे He prefers dying to living का अनुवाद 'वह जिन्दगी से मृत्यु को वरीयता देता है' बड़ा ही अटपटा और बेढंगा लगता है, क्योंकि कहना चाहिए था : 'वह जीने के बजाय मरना बेहतर समझता है।'

(ख) भावानुवाद—भावानुवाद में अनुवादक का ध्यान भाव, विचार और अर्थ पर अधिक रहता है और वह पूरी शक्ति से उसी को लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करने का प्रयास करता है। भाषा के पदों और वाक्यों पर अधिक ध्यान न देने के कारण यह अर्थ-विज्ञान के अधिक निकट है। अनुवादक स्रोत-भाषा पाठ-सामग्री के सम्पूर्ण अर्थ को लाने का प्रयास करता है, इसलिए इसमें स्रोत-भाषा की आत्मा प्रायः सुरक्षित रहती है। सूक्ष्म अर्थच्छायाओं वाली स्रोत-भाषा की सामग्री का लक्ष्य-भाषा में अनुवाद इस अर्थ में हितकारी सिद्ध होता है कि अनुवादक अर्थ की एक सूक्ष्म पकड़ को बिखराव में नष्ट नहीं होने देते। भावानुवाद कई प्रकार का होता है। कभी-कभार ऐसा भी होता है कि स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री के शब्दानुवाद से शब्दों के बेहद जटिल जंजाल में फँस जाने की संभावना होती है तो ऐसी स्थिति में भावानुवाद ही करना बेहतर होता है। भावानुवाद में स्रोत-भाषा की बाह्य शारीरिक योजना के समाप्त हो जाने से अनुवाद मुक्त दिखाई देता है। साथ ही शाब्दिक यान्त्रिकता से मुक्त हो जाने के कारण अनुवादक अपनी सृजनात्मकता सहज शक्ति से काम लेता है। इस प्रकार भावानुवाद एक सीमा तक सृजनात्मकता के अधिक निकट है। मूल के शब्दशः अनुवाद पर आधारित न होने के कारण यह अनुवादक की मौलिकता का क्षेत्र भी है और इस मौलिकता से मौलिक सृजन की तरह का रचनात्मक आनन्द पाठक को प्राप्त होता है। कई बार तो अनुवादक भावानुवाद में इतना क्षमता सम्पन्न होता है कि पाठक यह भूल जाता है कि वह अनुवाद को पढ़ रहा है या मूल को। हिन्दी में बाबू श्यामसुन्दरदास ने साहित्यालोचना' में हडसन की पुस्तक An Introduction to the Study of Literature का इतना सफल भावानुवाद किया है कि उसमें बाबूजी की मौलिकता दर्शनीय है। एक उदाहरण लीजिए—हडसन ने लिखा है—'Thus in our study of literature on the historical side we shall have to consider two things—The continuous or life national spirit in it, and the Varying phases that continuous life or, the way in which it embodies and expresses the changing spirit of successive ages. First, what do we mean when we speak of the history of greek or French or English literature ? (page 31)

बाबूजी ने 'साहित्यालोचना' में उसका भावानुवाद इस प्रकार किया है—
 "अतएव किसी साहित्य के अध्ययन में ऐतिहासिक दृष्टि से हमें दो बातों पर विचार करना पड़ता है—एक तो उसके परम्परागत जीवन पर अर्थात् उसके जातीय भाव

पर और दूसरे, उस जीवन के परिवर्तनशील रूप पर अर्थात् इस बात पर कि वह जातीय जीवन किस प्रकार भिन्न-भिन्न समयों के भावों को अपने में अन्तर्हित करके उन्हें व्यञ्जित करता है। अतएव किसी जाति के काव्य-समूह या साहित्य के अध्ययन से हम यह जान सकते हैं कि इस जाति या देश का मानसिक जीवन कैसा था और वह क्रमशः किस प्रकार विकसित हुआ।” (साहित्यालोचन, पृ० 44) इस अनुवाद में हडसन से ज्यादा बाबूजी के व्यक्तित्व और शैली की छाप है।

विद्वान् लोग भावानुवाद का यह दोष मानते हैं कि उसमें मूल लेखक का व्यक्तित्व रह जाता है और अनुवादक अपनी भाव-सम्पदा, विचार-सम्पदा तथा शैली से पाठक को आक्रान्त कर लेती है। इस कथन पर गहराई से विचार करते ही यह बात निकलती है कि यह अत्यंत असंगत तर्क है क्योंकि भावानुवाद में अनेक प्रकार की उलझनों से मुक्ति मिलती है और वह दूसरी भाषा के महत्त्वपूर्ण विचारों और अभिव्यञ्जनाओं को अपनी भाषा में लाता है। साहित्य के अनुवाद का यही इस दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी पद्धति है।

(ग) छाया अनुवाद—छायानुवाद में अनुवादक मूल पाठ की छाया—अर्थछाया को अनुवाद में डालता है। ‘छाया’ संस्कृत का बहुत पुराना शब्द है और इसका प्रयोग नाटकों में यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। संस्कृत पाठ की छाया जब हिन्दी पाठ पर दृष्टिगत होती है तो उसे छाया अनुवाद कहा जाता है। जैसे अवन्ति वर्मा का यह श्लोक देखिए :

दुःसहतापभयादिव सम्प्रति मध्यस्थिते दिवसानके ।

छायामिव वाछन्ती छायापि गता तरुलतानि ॥

शाङ्ग 3835

इसका छाया अनुवाद बिहारी के दोहे में इस प्रकार मिलता है :

‘बैठि रही अति सघन वन पैठि सदन तन मांह ।

निरखि दुपहरी जेठ की छाहो चाहति छांह ॥

विदेशी कृतियों की प्रविधि और छाया को लेकर जो रचनाएं की जाती हैं उनमें भी एक प्रकार का छाया अनुवाद रहता है। जैसे अज्ञेयजी के उपन्यास ‘नदी के द्वीप’ पर डी० एच० लारेन्स के Lady Chatterly’s Lover की धुंधली छाया दृष्टिगत होती है। रांगेय राघव के उपन्यास पर ‘Uncle Tom’s Cabin’ की छाया, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास ‘चित्रलेखा’ पर ‘ताइस’ की छाया या प्रेमचन्द के ‘रंगभूमि’ पर थैकरे के ‘Vanity Fair’ की छाया। कभी-कभार लेखक विशेष की कुछ पंक्तियों पर देशी-विदेशी लेखक की छाया दृष्टिगत होती है। पन्तजी की पंक्ति है—‘सिखा दो ना हे मधुपकुमारि, मुझे भी अपने मीठे गान’ यह अंग्रेजी कवि शैली की इस पंक्ति का छाया अनुवाद प्रतीत होती है—
(Teach me half of the gladness that they brains must Know)

(घ) रूपान्तरण (Adaptation)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, अनुवादक इसमें कृति का रूप बदलता है। इसीलिए रूपान्तरकार स्रोत-भाषा के पाठ को अपनी आवश्यकतानुसार बदलते हुए लक्ष्य-भाषा में प्रस्तुत करता है। मूल सामग्री की विधा का परिवर्तन प्रायः इसमें होता है। उपन्यास या कहानी को नाटक में बदल दिया जाता है। सुविधा के अनुसार पात्र और काल-योजना में भी हेर-फेर हो सकता है। शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक Othello का हिन्दी में उपन्यासपरक रूपान्तर शत्रुघ्नलाल शुक्ल ने किया है। यह रूपान्तर एक ही भाषा में विधागत परिवर्तन के रूप में हो सकता है। शेक्सपियर के नाटकों को चार्ल्स लैम्ब ने 'Tales from Shakespeare' में कहानियों के रूप में रूपान्तरित किया है। उसी प्रकार विभिन्न कविताओं-उपन्यासों आदि के नाट्य रूपान्तर होते हैं जैसे विष्णु प्रभाकर द्वारा प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास का 'होरी' रूप में नाट्य रूपान्तर या मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'अंधेरे में' का नाट्य रूपान्तर है। रूपान्तर बहुत लोकप्रिय इसलिए भी हुए हैं कि उनमें शब्द-विधान को दृश्य-रूप में, दृश्य को शब्द या पाठ्य-विधा-रूप में प्रस्तुत किया जाता है। आजकल टेलीविजन धारावाहिकों में उपन्यासों तथा कहानियों को दृश्य रूपांतरित करके प्रस्तुत किया जाता है।

(ङ) सारानुवाद (Summary translation) --लम्बे भाषणों, राजनीतिक वार्ताओं आदि में दुभाषिये इस प्रकार की अनुवाद-पद्धति का ही सहारा लेते हैं। क्योंकि उसमें स्रोत-भाषा की सामग्री का लक्ष्य-भाषा में सारांश प्रस्तुत किया जाता है। इसमें आवश्यकता इस बात के चयन की होती है कि जो बातें स्रोत-भाषा में कही गई हैं उनका मुख्यार्थ प्रस्तुत किया जाए। भाषणों, संसद में दिए गए वक्तव्यों तथा बहसों का अनुवाद इसी कोटि में आता है।

(च) भाषा या टीकापरक अनुवाद—अनुवाद की यह आचार्य पद्धति कही जानी चाहिए। क्योंकि इससे स्रोत-भाषा की मूल की व्याख्या के साथ अनुवाद भी किया जाता है। विषय विशेष के विद्वान का जैसा वैदुष्य होता है यह भाष्य या टीका उसी कोटि की होती है क्योंकि इसमें कथ्य के स्पष्टीकरण के लिए भाष्यकार अपनी ओर से उद्धरण, उदाहरण और प्रमाण जोड़ सकता है। भाष्यकार कोरा अनुवादक नहीं होता, वह अपने व्यक्तित्व की महत्ता को अर्जित ज्ञान के माध्यम से कथ्य पर स्थापित करता है जैसे आचार्य विश्वेश्वर की 'हिन्दी अभिनव भारती', 'हिन्दी ध्वन्यालोकलोचन' आदि की वैदुष्यपूर्ण व्याख्याएं या संस्कृत की काव्यशास्त्रीय रचना 'साहित्य-दर्पण' पर डॉ० सत्यव्रत सिंह की व्याख्या अथवा गीता पर बाल गंगाधर तिलक का 'गीता-भाष्य'।

भारतीय साहित्य में इस प्रकार के भाष्य और टीकाओं की व्यापक परम्परा रही है। वेदों और उपनिषदों के अनेकानेक भाष्य इसी मनीषी परम्परा ने किए

हैं। आज भी गीता, उपनिषद्, रामायण, वेद आदि के नये से नये भाष्य किए जा रहे हैं और परम्परा समाप्त नहीं हुई है।

(छ) आशु अनुवाद (Interpretation)—आज विश्व-भर में आशु अनुवाद सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। क्योंकि जब अलग-अलग देशों के दो वी. आई. पी. व्यक्ति भिन्न-भिन्न भाषाओं में बातचीत करते हैं तो उन दोनों की बातचीत को सम्प्रेषित करने के लिए अनुवादक दुभाषिये (Interpreter) का काम करता है। आशु अनुवादक का भाषा-ज्ञान गहन एवं अत्यन्त प्रामाणिक होना चाहिए। तमाम महत्त्वपूर्ण भाषणों, वार्ताओं, अनुबन्धों आदि का अनुवाद उसे कोश या सन्दर्भ ग्रन्थों की सहायता के बिना आमने-सामने करना पड़ता है। इस दृष्टि से भाषा ही नहीं, उसे दोनों देशों के इतिहास और संस्कृति तथा समाज से गहरा परिचय होना चाहिए। ताकि वह ऐसी भूल न करे, जिसके परिणाम भयंकर हों। इस प्रकार के अनुवाद का एक विशिष्ट सांस्कृतिक सन्दर्भ है। आज की प्रतियोगितापरक दुनिया में आशु अनुवादकों की दिन-प्रतिदिन जरूरत भी बढ़ रही है। युद्ध हो या संधि, व्यापार हो अथवा सांस्कृतिक आदान-प्रदान आशु अनुवादक के बिना काम नहीं चलता। दूसरे देशों के प्रधान मन्त्री या विदेश मन्त्री यह अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के कथ्य को सम्प्रेषित करने का आज यही महत्त्वपूर्ण साधन है।

अनुवाद विज्ञान है अथवा कला ?

आधुनिक संसार में अनुवादकों ने मध्य युग के अनुवादकों की तुलना में चाहे बहुत अच्छे अनुवाद न प्रस्तुत किए हों, अथवा नहीं किन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने कार्य की जटिलता और निहितार्थ को खूब भीतर से समझ लिया है। आधुनिक अनुवादकों के अनुवाद इस तथ्य की पुष्टि का बेहतर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अनुवाद कार्य की आवश्यकता को समझते हुए एक आत्म-सजग अनुवाद-शैली उत्पन्न हुई है, जिसमें कला और विज्ञान दोनों के तत्त्व समाविष्ट हैं। अनुवाद की नयी-नयी तकनीकों को अपनाने के कारण भी अनुवाद एक नयी विशिष्टताएं ग्रहण कर रहा है।

मूलतः अनुवादक एक विशिष्ट प्रकार का व्याख्याता होता है। यह व्याख्याता शब्द और शब्द के सन्दर्भ को विश्लेषित करते हुए अपनी दृष्टि निर्मित करता है। निरीक्षण-परीक्षण तथा शब्द की अनुसन्धानात्मक कला में प्रवृत्त होता हुआ यह निर्णय लेता है कि उसे किस दिशा-विशेष में प्रवृत्त होना है 'अनु' का अर्थ है— 'पीछे' और 'वाद' का अर्थ है 'कथन', अर्थात् पश्चाद्गमन या किसी तथ्य की प्राप्ति के लिए परिपृच्छा या परीक्षण करना। इस दृष्टि से तीन तथ्य हमारे सामने उपस्थित होते हैं—

- (1) स्रोत-भाषा में उपलब्ध सामग्री में प्रस्तुत कथ्य का सन्दर्भ-विश्लेषण तथा वाक्य-विश्लेषण।
- (2) सम्प्रेष्य कथ्य का लक्ष्य-भाषा में पुनर्गठन।
- (3) पुनर्गठित रूप का शैलीकरण।

इस प्रकार अनुवाद स्रोत-भाषा के पाठ के सम्प्रेष्य कथ्य का लक्ष्य-भाषा के पाठ में पुनर्गठन एवं शैलीकरण करते हुए अन्तरण है। अर्थ को लक्ष्य-भाषा में अंतर्गुहित करते समय विज्ञान, कला और शिल्प तीनों की अपेक्षा रहती है। इसीलिए अनुवाद, कला, शिल्प और विज्ञान तीनों मिली-जुली प्रक्रिया है।

सामान्य ज्ञान और विशिष्ट ज्ञान में गहरा पार्थक्य है। ज्ञान साधारण जानकारी है और उस साधारण जानकारी का विशेष ज्ञान होने पर ज्ञान का यह

30 अनुवाद प्रक्रिया

विकास विज्ञान हो जाता है। परन्तु जब यह विशेष ज्ञान पुनः सामान्य ज्ञान की वस्तु बन जाता है तो उसे विज्ञान नहीं कहा जा सकता। विज्ञान वह पुनः उसी स्थिति में बनता है जब उस विद्या का सामान्य ज्ञान नवीन कार्य-कारण सम्बन्ध से पुनः विशिष्ट ज्ञान में बदल जाता है। इस प्रकार सामान्य ज्ञान से विशिष्ट ज्ञान बनने की यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इसी अर्थ में विज्ञान किसी भी विषय का तर्काश्रित कार्य-कारणमय व्यवस्थित और विशिष्ट ज्ञान होता है। विशुद्ध विज्ञान में नियमों के अपवाद नहीं मिलते। क्योंकि उसमें विकल्प के लिए कोई स्थान नहीं होता। एक प्रकार से विज्ञान के नियम सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक होते हैं। किन्तु इस प्रकार के नियम अनुवाद पर लागू नहीं हो सकते। वे देशकाल और स्थिति के अनुसार अपवादों को जगह देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अनुवाद केवल विज्ञान नहीं है और कुछ भी है।

इस प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठता है कि अनुवाद को विज्ञान कहना कहां तक उचित है? वस्तुतः अनुवाद उस अर्थ में विज्ञान नहीं है जिस अर्थ में भौतिकी, जैविकी या गणित को विज्ञान कहा जाता है। यह भी सत्य है कि आज विज्ञान शब्द के प्रयोग में ढील या शिथिलता के लक्षण पाए जाते हैं। उसके ज्ञान का उन शाखाओं के लिए भी प्रयोग किया जा रहा है जो वास्तविक अर्थ में विज्ञान नहीं है। ऐसा कहने का प्रमुख कारण यही है कि विज्ञान का सबसे बड़ा आधार है—कार्य-कारण भाव की नित्यता। इस दृष्टि से ज्ञान की अनेक शाखाएं ऐसी हैं जिनमें कार्य-कारण भाव की नित्यता नहीं पाई जाती और फिर भी उन्हें चलते अर्थों में विज्ञान कह दिया जाता है जैसे सामाजिक विज्ञान, राजनीतिक विज्ञान आदि।

आधुनिक विद्वान ज्ञान के क्षेत्रों को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं—

(1) भौतिक-विज्ञान (2) सामाजिक विज्ञान (3) मानविकी।

भौतिक-विज्ञान का सम्बन्ध उन वस्तुओं से है जो मानवकृत नहीं हैं? सामाजिक विज्ञान मानव के सामाजिक क्रिया-कलाप का कार्य-कारण सम्बन्ध से तार्किक अध्ययन है। मानविकी में वैयक्तिक और सृजनात्मक ज्ञान का अध्ययन-विश्लेषण होता है। यह भी मानना होगा कि ज्ञान के यह तीनों वर्ग परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं। एक विज्ञान दूसरे विज्ञान की सीमा में अनुप्रवेश करता है। ऐसी स्थिति में अनुवाद-कार्य इन तीनों सीमाओं के भीतर आता है। एक ओर उसका सम्बन्ध भाषा-विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान आदि से है, दूसरी ओर वैयक्तिक और सृजनात्मक साहित्य रूपों से सम्बद्ध होने के कारण आज वह मानविकी का प्रमुख अंग है। अतः अनुवाद उस अर्थ में विज्ञान नहीं है जिस अर्थ में हम विशुद्ध विज्ञान (Pure sciences) सामाजिक विज्ञानों को विज्ञान कहते हैं। वह तो विज्ञान केवल इसलिए है कि उसके नियम कार्य-कारण सम्बन्धों पर आश्रित हैं। चूंकि इन

नियमों में प्रायः अपवाद भी हैं, इसलिए अनुवाद विशुद्ध विज्ञान की सीमा में नहीं आता। परन्तु अनुवाद में कोई सिद्धान्त या नियम है ही नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। नियम और अनुभव दोनों का योग होने के कारण वह अपनी प्रवृत्ति से विज्ञान की ओर झुकता है। अनुवाद के नियम अनुवादक के लिए साधना भी हैं और साध्य भी। अर्थात् अनुवादक स्रोत-भाषा के ज्ञान को लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करते समय अपने व्यक्तिगत विवेक और ज्ञान की वैज्ञानिकता का पूरा उपयोग करता है।

अनुवाद के अध्ययन की प्रक्रिया विज्ञान के अध्ययन की प्रक्रिया से निकटता रखती है। जिस प्रकार विज्ञान सम्बन्धी अनुशीलन में तथ्य संकलन, तुलना, निरीक्षण, वर्गीकरण, विश्लेषण, नियम-निर्धारण आदि कार्य करते हैं उसी प्रकार की स्थितियां अनुवाद कार्य में भी आती रहती हैं। वैज्ञानिक के समान अनुवादक को भी तटस्थ रहना पड़ता है एवं अनुवाद के माध्यम से एक भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा के कथ्य में सही ढंग से लाना पड़ता है। इस प्रकार वह सांस्कृतिक भाषा का एक ऐसा सम्पर्क-सूत्र खड़ा करता है जिसकी उपयोगिता सामाजिक जीवन में अत्यधिक है। वैज्ञानिक अनुसंधानशाला में बैठकर मानव-कल्याण की ओर प्रवृत्त होता है और अनुवादक स्रोत-भाषा की सामग्री से जूझकर मानव-कल्याण की ओर या विचार के आदान-प्रदान की सुविधा की ओर समानार्थक शब्दों या नये शब्दों को खोजकर आगे बढ़ता है, दो देशों के भाषा-साहित्य और संस्कृतिपरक ज्ञान को सरलता, सुबोधगम्यता और दृष्टि की वैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अनुवादक कुछ अपवादों को छोड़कर निश्चित नियमों का अनुसरण करता है। यह प्रक्रिया पूरी तरह से वैज्ञानिक है। यदि इसमें वैज्ञानिक नियम न होते तो मशीनी अनुवाद सम्भव ही नहीं हो सकता था। दो भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण के आधार पर सुनिश्चित वैज्ञानिक नियमों ने ही इस प्रक्रिया को संभव बनाया है। इस प्रकार अनुवाद की सम्पूर्ण मानसिकता वैज्ञानिक प्रक्रिया की मानसिकता से जुड़ी है और अनुवादक की पूरी पृष्ठभूमि कार्य-कारण सम्बन्ध से रहित नहीं है। इसी अर्थ में अनुवाद विज्ञान कहा जा सकता है।

किन्तु अनुवाद मात्र विज्ञान ही नहीं है, वह कला और शिल्प भी है। कौशल का अंग्रेजी रूपान्तर है—क्राफ्ट (Craft) और कला का—आर्ट (Art)। एक प्रकार से कला शब्द सभी प्रकार की लालित्य-बोधीय अनुभूतियों, अनुभवों और अभिव्यक्तियों के लिए आता है। कला को लेकर यह प्रश्न बराबर उठाने जाते रहते हैं कि कला में सौन्दर्य की प्रकृति क्या है? कलाकृतियों में रूप और विषय-वस्तु के अन्तर्सम्बन्ध कैसे हैं? कला और सामाजिक जीवन के अभिव्यंजक रूप क्या-क्या हैं? समाज तथा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच कला एवं सौन्दर्य के

विषय में कौन-सी धारणाएं हैं? वैयक्तिक और सामूहिक जीवन में कला का क्या स्थान है? इतिहास के विशेष बिन्दु पर सामान्य जन के लिए कला का अर्थ और सार्थकता क्या है? इस बात का उत्तर यह हो सकता है कि समाज-दर्शन और सौन्दर्यबोध-शास्त्र का जो आमना-सामना है वही कला और जीवन का तादात्म्य है। इस प्रकार जीवनयुक्त कला एक क्रान्तिकारी प्रत्यय है। इसमें अनुभव-संसार और अभिव्यक्ति-प्रणालियों तथा हमारी सौन्दर्याभिरुचियों का रूपान्तरण होता है। कला बिम्बों, प्रतीकों, अभिप्रायों और अभिव्यंजनाओं के आयामों में उथल-पुथल मचाने की प्रक्रिया है। अभिव्यंजना की जटिल अभिव्यक्तियों, अनुभूतियों, प्रतीकों के आदिम रूपों, फन्तासियों (Fantacies) सुख-दुखात्मक भाव-प्रत्ययों को विलक्षण ढंग से प्रस्तुतीकरण देने में कला सबसे आगे है।

अनुवादक कला के इस स्वभाव में घुल-मिल जाता है। साहित्यिक अनुवादक कलाकार की भांति कृति के रेशे-रेशे, संरचना (Structure) तथा बनावट (Texture) रूप तथा विषय-वस्तु में गहरे से गहरे अवगाहन करता है। ऐसी दशा में उसे सौन्दर्य-तत्त्व ग्राह्य होता है अर्थात् वह सौन्दर्यानुभव करता है। कृति के साथ उसका यह अन्तरंग साक्षात्कार उसे निर्वैयक्तिक अनुभूति में बांधता है और कलाकार की भांति अनुवादक अपने वैयक्तिक आलोचनात्मक निर्णय को स्थगित कर देता है। कहना न होगा कि वह अनिवार्यतः कला का सौन्दर्य वास्तविक पथों से सम्बद्ध हो जाता है। कृति के सम्पूर्ण सांस्कृतिक सन्दर्भ में वह धंसता है और अमूर्त सौन्दर्य-बिन्दुओं को व्यवस्थित करने में शक्ति लगाता है। इस प्रकार अनुवादक कला से सम्बन्धित दूसरा व्यक्ति नहीं है। वह मात्र उल्थाकार या तर्जुमाकार या भाषान्तरकार नहीं है, वह समर्थ शक्तियों से पूर्ण आख्याता और कलाकृति के स्वभाव के अनुकूल शैलियों को बारीकी से खोजने वाला पुनः-सर्जक है, चूंकि वह कृति का रिश्ता सम्पूर्ण सांस्कृतिक सन्दर्भ से जोड़कर देखता है और ऐसा करने में ही उसकी प्रतिभा सन्तुष्ट होती है। वह लाक्षणिक, आलंकारिक, संलक्षी-वक्रोक्तिपूर्ण अर्थच्छायाओं से तादात्म्यीकृत होता है और रूपकों तथा सादृश्यों की भाषा में अन्तर करता हुआ सन्दर्भ के सही आशयों को हृदयंगम करके अनुवाद करता है। इस प्रकार से वह एक प्रकार की रचनात्मक प्रक्रिया से जुड़ता है और इस रचनात्मक प्रक्रिया से सम्बद्ध होने के कारण ही अनुवाद एक कला है। हां, इस कला का शिल्प विषय एवं क्षेत्र के अनुसार बदलता है।

लेकिन सभी क्षेत्र अनुवादक के विस्तृत ज्ञान और सूक्ष्मज्ञ की अपेक्षा करते हैं। अंतर केवल इतना है कि ज्ञान के साहित्य अनुवादक के विधि, विज्ञान आदि के पाठ का अभिप्रेत अर्थ समझना पर्याप्त क्योंकि यह अनुवाद सूचनार्थ होता है और इस अनुवाद में केवल विषय की जानकारी ही पर्याप्त है। पुनर्प्रस्तुति में व्याकरणिक शुद्धता, कला-सौष्ठव, वाक्य-विन्यास पर पूर्ण ध्यान अपेक्षित होता है। भाषा के

कलात्मक गठन, सौन्दर्य-परक अन्तर्योजना और अन्तर्ग्रन्थन, बारीक अर्थच्छाया आदि पर दृष्टि केन्द्रित करने की अपेक्षा यहां नहीं होती है। लेकिन साहित्यिक रचना के अनुवाद में कृति के मूल सौन्दर्य निर्वाह की अपेक्षा रहती है। वहां लक्ष्य-भाषा में सृजन की क्षमता अत्यधिक आवश्यक है। अनुवाद को कला मानने का कारण मात्र साहित्यिकता नहीं है। कलाकार के बिम्बों-प्रतीकों और अभिप्रायों को कलापूर्ण ढंग से लाने में ही अनुवादक की मौलिकता है।

कला और शिल्प को अलग नहीं किया जा सकता। अलग-अलग दिखाई देने पर भी वस्तुतः यह एक-दूसरे से भिन्न नहीं होते। इस तरह शिल्प, कला की ही एक अवधारणा है। कला नैसर्गिक प्रतिभा का सहज विस्फोट है, इसलिए तमाम ललित कलाएं अर्जन और शिक्षण को महत्त्व देने पर भी यही नारा लगाती हैं कि कलाकार उत्पन्न होते हैं, वे बनाए नहीं जाते। अनुवादक कलाकार की भांति सृजनकर्त्ता नहीं है क्योंकि सृजन आत्म-साक्षात्कार के क्षणों की अनिवार्य प्रक्रिया है जिसका परिणाम है—आत्माभिव्यक्ति। परन्तु अनुवादक इस अर्थ में कलाकार है कि वह कलाकार की आत्माभिव्यक्ति को अपने में उतारता है, उससे पुनः आत्म-साक्षात्कार करता है और तटस्थ भाव से उसको पुनः अभिव्यक्त कर देता है। इस अर्थ में अनुवादक का व्यक्तित्व पुनरुत्पादक कलाकार का व्यक्तित्व है। कला सृजन है और अनुवाद पुनर्सृजन। यह एक प्रकार का प्रविधि और प्रक्रियागत पार्थक्य है।

अनुवाद में कला और विज्ञान दोनों के तत्त्व निहित होते हैं। शिल्प भी कला के अन्तर्गत समाया हुआ है। ऐसी स्थिति में यह कहना सही होगा कि अनुवाद न तो विज्ञान है, न कला है, न शिल्प है। सच्चे अर्थों में वह कला का विज्ञान है। उसमें पुनराख्यान, मौलिकता, प्रातिभ शक्ति और प्रतिपादन सौष्ठव का योग होने के कारण ऐसा कहना सर्वथा उचित है।

अनुवाद और भाषाविज्ञान

हम चर्चा कर चुके हैं कि स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा की पाठ-सामग्री में अन्तरित करने की प्रक्रिया अनुवाद है। इस प्रकार अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में भाषांतरण है। भाषागत प्रतीकों के प्रति सजगता अनुवादक का दायित्व है क्योंकि इन्हें ठीक से ग्रहण और पुनर्प्रस्तुत न कर पाने पर ही अनुवाद में घपला हो जाने की सम्भावना रहती है। अनुवाद का सम्बन्ध भाषा से है और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसंधान भाषा-विज्ञान का विषय है। यही कारण है कि अच्छा अनुवादक भाषा के मर्म को समझने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह भाषागत संरचना पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करता है। भाषागत संरचना के मुख्य आधार हैं—संज्ञा, क्रिया, विशेषण तथा अव्यय।

भाषा के अध्येता मानते हैं कि भाषा जीवन की ठोस वास्तविकता है। इसीलिए भाषा की परिभाषा और व्याख्या समय-समय पर विविध संदर्भों को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की गई है। प्रमुख बात तो यह है कि भाषा सम्प्रेषण व्यापार का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है और यह माध्यम सांकेतिक और यादृच्छिक प्रतीकों पर आधृत है। 'भाषा' एक व्यापक शब्द है जिससे सभी विशिष्ट भाषाओं का बोध होता है। अपनी प्रकृति के अनुसार भाषा एक मौखिक प्रतीकात्मक पद्धति है। प्रतीकार्थ विज्ञान की यह मान्यता सही है कि भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की पद्धति है। इस पद्धति के चार महत्त्वपूर्ण रूप हैं—

- (1) भाषा एक पद्धति है।
- (2) भाषा प्रतीकों की पद्धति है।
- (3) भाषा की रचना वाचिक प्रतीकों से होती है।
- (4) भाषिक प्रतीक यादृच्छिक होते हैं।

इसी प्रकार भाषा प्रतीक पद्धति से विचारों और भावों की सीधी अभिव्यक्ति है। सीधी दृष्टिगत होने पर भाषा एक जटिल मानसिक क्रिया है जिसमें अनेक अनुभव-प्रेरक प्रतीक अन्तर्निहित होते हैं। ब्लूमफील्ड ने कहा है—“भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जिसके माध्यम से किसी

भाषा-भाषी समुदाय के लोग अपने भाव या विचारों को एक-दूसरे तक सम्प्रेषित करते हैं।”

इसी प्रकार हाल तथा ट्रेगर की मान्यता है, “अन्ततोगत्वा भाषा यादृच्छिक प्रतीकों की एक व्यवस्था ही होती है जिसके माध्यम से किसी भाषा-भाषी समुदाय के लोग एक-दूसरे से बातचीत करते हैं। इस विधान की सार्थकता यह होती है कि यह ऐसी वस्तुओं, विचारों, संकल्पनाओं तथा गतिविधियों की ओर निर्देश करती है जिनका अस्तित्व उस समुदाय विशेष में पाया जाता है।”

भाषा के इस सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करते हुए भाषाविद् सस्यूर ने लिखा है, “भाषा एक तरह का ऐसा सामाजिक विधान या संविदा है जो व्यक्ति वक्ता के माध्यम से किन्हीं भी तरीकों से न तो अस्तित्व में लाया जा सकता है, न संशोधित अथवा विकृत किया जा सकता है। उसमें एक ऐसा वाक्पथ अन्तर्निहित होता है जिसके अन्तर्गत ध्वनिबिम्ब अथवा श्रवण किसी अर्थ से जुड़ जाता है।”

इस प्रकार भाषा एक समाजबद्ध स्वतन्त्र पद्धति है, जिसे वास्तवपन की अनुकृति नहीं कहा जा सकता। प्रतीकात्मक होने के कारण वह सदैव सार्थक ध्वनियों से निर्मित होती है। ध्वनियां और संकेत पशु-पक्षी भी करते हैं किन्तु मनुष्य सार्थक ध्वनियों में अपने को बांधकर विशिष्ट बनाता है। इसीलिए भाषा होने के लिए प्रथम अनिवार्य स्थिति है भाषा का पद्धतिबद्ध होना। वह तो भाषा हो ही नहीं सकती, जिसकी कोई पद्धति नहीं है। चूंकि भाषा मानव की यादृच्छिक प्रवृत्ति है, अतः उसमें किसी आधिभौतिक और दैविक शक्ति का हाथ नहीं है। वह स्वाभाविक प्रवृत्ति की भांति समाज में अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक शक्ति है।

सामान्य प्रयोग या व्यवहार में भाषा शब्द दो रूपों का वाची है—

- (1) सामान्य भाषा—जैसे जापानी, जर्मन, अंग्रेजी आदि।
- (2) विशिष्ट भाषा—जैसे राष्ट्रभाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा, मानक भाषा, आंचलिक भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा आदि जो किसी विशिष्ट रूप का बोध कराती है।

भाषा के अनेक रूपों में मनुष्य वाक्शक्ति द्वारा विचारों को सम्प्रेषित करता है। किन्तु सामान्य ढंग से रूपगत भिन्नता होने के कारण एक भाषा दूसरी भाषा से ध्वनिप्रतीक, समूह-संघटना, संरचना और शैली में अलग होती है। इस भिन्नता का कारण ऐतिहासिक-सांस्कृतिक है। भौगोलिक परिवेश और परम्परागत संस्कार भी अलगाव को जन्म देते हैं। इसलिए भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध बहुत गहरा है। समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, कार्य-प्रणाली, भौगोलिक स्थितियां, ऐतिहासिक और धार्मिक पृष्ठभूमि और आर्थिक आधार उसमें प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। इसीलिए संस्कृति में मानव के भाषिक और

भाषिकेतर व्यवहार और सिद्धान्त समाहित हैं। प्रोफेसर जॉर्ज ग्युसदोर्फ इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे—“भाषा और संस्कृति को न तो अलग-अलग किया जा सकता है और न किया जाना चाहिए, वैसे ही जिस प्रकार भाषा और विचार को कभी अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से भाषा और संस्कृति की पारस्परिकता एक अनिवार्य सम्बन्ध में बंधी है।”

इस प्रकार भाषा दो तरह के अध्ययन और ज्ञान पर निर्भर है—वस्तु का ज्ञान और वस्तु विषयक ज्ञान। संस्कृति की सम्पूर्ण आत्मा भाषा में अभिव्यक्ति पाती है। स्वयं ब्लूमफील्ड इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि किसी भी भाषा के स्वरूप और उसकी संस्कृति के ठीक ज्ञान के बिना भाषा पढ़ाने का मतलब बच्चे के कई साल नष्ट करना भर है और उसका परिणाम नगण्य होता है।”

इस कोण से भाषा की समझ सांस्कृतिक संदर्भों में भाषागत प्रतीकों और उनके अर्थों से निर्धारित होती है।

प्रायः भाषा-विज्ञान में भाषा का तात्पर्य साहित्यिक भाषा से लिया जाता है। जिस भाषा में लिखित साहित्य नहीं होता उसे भाषा न कहकर बोली कहा जाता है। जाहिर है कि यहां साहित्य से तात्पर्य विविध क्षेत्रों के ज्ञानपरक साहित्य से भी है केवल सृजनात्मक साहित्य मात्र से नहीं। सामान्य मान्यता है कि भाषा हमें साहित्य से सीखने को मिलती है और बोली जनसमाज तथा माता-पिता से। यह निरीक्षण का विषय है कि हमारे बोलने और लिखने में सदैव दूरी या अन्तर रहता है। लिखने में हम संयमन और नियंत्रण से सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इसीलिए भाषा के हिमायती बोली को गंवारू, असभ्य या असंस्कृत लोगों की भाषा कहते हैं। संस्कृत-सुशिक्षित लोगों की भाषा की तुलना में यह और अपभ्रंश, अपभ्रष्ट (Corrupt) शब्दों से भरी हुई भाषा समझी जाती रही है। बोली सम्बन्धी इस भ्रम को आज खण्डित भी किया जा रहा है क्योंकि एक शताब्दी पूर्व ब्रजभाषा ‘भाषा’ थी और खड़ी बोली ‘बोली’ किन्तु धीरे-धीरे खड़ी बोली न केवल भाषा बनी अपितु राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पद पर समासीन हो गई। इस प्रकार बोलियां, मानक अथवा आदर्श का अतिक्रमण करती रहती हैं क्योंकि वे लोक-जीवन या लोक-संस्कृति से अपनी खुराक लेती हैं। असल में जिन वाक् रूपों की कोई लिखित पद्धति नहीं है या अपढ़ लोग अनगढ़पन से जिनका प्रयोग करते हैं वह भाषा के विपरीत पड़ती है और उन्हें बोली कह दिया जाता है। इसलिए बोली (Dialect) और भाषा (Language) के अन्तर को भाषा-विज्ञान सर्वेक्षणात्मक धरातल पर समझाना चाहता है।

भाषा-विज्ञान अनुवादक के लिए तो यह निर्देश देता है कि जहां तक सम्भव हो सके मानक भाषा (Standard language) ही प्रयुक्त होनी चाहिए। किन्तु यदि विदेशी भाषा के किसी शब्द के लिए लोक-प्रचलित बोली या कोई शब्द बहुत

अधिक उपयुक्त हो और उसकी संदर्भगत अर्थवत्ता पर कोई संशय न हो तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए।

अनुवादक एक भाषा के प्रतीकों को दूसरी भाषा में भाषांतरित करता है और इन दोनों भाषाओं में प्रायः प्रकृतिगत भिन्नता होती है और यदि समानता भी होती है तो अक्सर ऊपरी समानता होती है। अतः दोनों में ही विशिष्ट सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परिवेश के कारण भावों, विचारों और क्रियाओं, स्थितियों और वस्तुओं को व्यक्त करने वाले प्रतीक इनके अपने होते हैं जैसे—अंग्रेजी में ‘Chair’ और हिन्दी में ‘कुर्सी’। शब्दों के अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में लिंग, वचन, काल, पुरुष, कारक आदि को अभिव्यक्त करने की निजी व्यवस्था होती है जैसे संस्कृत में तीन लिंग होते हैं और हिन्दी में दो। हिन्दी में कर्त्ता के लिंग के अनुसार क्रिया का लिंग होता है किन्तु अंग्रेजी में ऐसा नहीं होता। हिन्दी के वाक्य ‘आप जाएंगे’ और ‘आप जाएंगी’ दोनों के लिए अंग्रेजी में ‘You will go.’ ही होगा। इसी प्रकार हिन्दी में निर्जीव वस्तुओं को भी स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अन्तर्गत रखा जाता है, जैसे ‘कमरा बड़ा है,’ ‘कोठरी छोटी है’। किन्तु अंग्रेजी में निर्जीव वस्तुओं के लिए Neuter gender है। इसी भांति हिन्दी में एक वचन ‘लड़का’ के बहु वचन रूप तीन होंगे—लड़के, लड़को, लड़कों; किन्तु अंग्रेजी में Boy का बहुवचन केवल ‘Boys’ ही होगा।

अनुवाद कार्य में स्रोत-भाषा की व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य-भाषा की व्यवस्था रखी जाती है। इस कार्य में अत्यन्त सावधानी अपेक्षित होती है। इस बात को हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं—

“Mohan reads.”—“मोहन पढ़ता है।”

“Shila reads.”—“शीला पढ़ती है।”

अंग्रेजी में Mohan तथा Shila दोनों के लिए “reads” क्रियारूप प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार कर्त्ता के लिंग का कोई प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ा है। किन्तु हिन्दी में क्रिया कर्त्ता के लिंग के अनुसार ही चलेगी और कहा जाएगा : “मोहन पढ़ता है।”, “शीला पढ़ती है।” इसी प्रकार हिन्दी के “आप जाते हैं।”, “तू जाता है”, “तुम जाते हो” के लिए अंग्रेजी में केवल “You go” ही रहेगा।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि अनुवाद का सीधा सम्बन्ध तुलनात्मक भाषा-विज्ञान व्यतिरेकी भाषा-विज्ञान (Contrastive linguistics) से है। अनुवाद-समानार्थक शब्द (Translation equivalents) खोजने की प्रक्रिया ही अपने आप में एक तुलनात्मक प्रक्रिया है। अब इस तुलना के दौरान अनुवादक दोनों भाषाओं में संरचनागत असमानता के तत्त्व खोजता है तथा संप्रेष्य कथ्य को लक्ष्य भाषा की संरचना एवं शैली के अन्तर्गत प्रस्तुत करता है। तुलनात्मक प्रक्रिया में हम स्रोत-भाषा के किसी शब्द की लक्ष्य-भाषा में ऐसी समानार्थी

खोजने का प्रयास करते हैं जो स्रोत-भाषा के शब्द के समकक्ष अर्थ को प्रस्तुत करने में अधिकाधिक समर्थ हो जैसे—अंग्रेजी के “Strongest” शब्द के लिए हिन्दी में हम लिखेंगे “प्रबलतम” यह तुलना ‘शब्द-समूह’ तथा ‘भाषा व्यवस्था’ दोनों की ही होती है। भाषा की व्यवस्था के अन्तर्गत वाक्य-रचना, रूप-रचना और ध्वनि आते हैं। इस प्रकार भाषा-विज्ञान के अंतर्गत आने वाले भाषा के छः तत्त्व—ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ रूप और लिपि सभी का स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक होता है। इस तुलना को अधिकाधिक व्यापक और प्रामाणिक बनाने के लिए भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन में ध्वनि-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, रूप-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, शब्द-विज्ञान और लिपि-विज्ञान आदि सभी विधियों का सहारा लेना पड़ता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका के अनेक भाषाशास्त्रियों ने, जिसमें शापियर तथा ब्लूमफील्ड प्रमुख हैं, भाषा के अध्ययन को नयी दिशा दी है। इन विद्वानों ने जीवित भाषा तथा बोली पर अधिक बल दिया। इसीलिए भाषा-विज्ञान (Linguistics) तथा भाषा-शास्त्र (Philology) दो अलग-अलग विषय बन गए। ये दोनों ही शब्द भिन्न-भिन्न रूप और अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। Philology शब्द का व्यवहार प्राचीन भाषा के अध्ययन के संदर्भ में होता है। अर्थात् इसका क्षेत्र प्राचीन भाषा-सामग्री के विश्लेषण तक सीमित है। किन्तु भाषा-विज्ञान (Linguistics) के अन्तर्गत आधुनिक जीवित भाषाओं और बोलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है कथ्य भाषा की ही व्याख्या की जाती है। आज के अनुवादक को भाषा-विज्ञान और भाषा-शास्त्र दोनों की ही सूक्ष्म और गहन पकड़ होनी चाहिए। प्राचीन और नवीन भाषा और साहित्य के ज्ञान के बिना अनुवाद सम्भव ही नहीं है क्योंकि अनुवाद में देश और काल दोनों ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। भाषा में होने वाले रूपगत और अर्थगत परिवर्तनों को पहचानते हुए ही पुरानी कृतियों और पाठों को सही ढंग से अनूदित करना संभव है।

भाषा-शास्त्र के अन्तर्गत सामान्य भाषा आती है और आधुनिक भाषा-शास्त्र के अन्तर्गत भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण कई रूपों में किया जा सकता है— (1) वर्णनात्मक, (2) समकालिक, (3) ऐतिहासिक, (4) तुलनात्मक, (5) गठनात्मक। इनमें से समकालिक भाषा-शास्त्र अनुवाद की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें जीवित बोलियों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। जीवित भाषा और बोली के लिए समकालीन साहित्य की जानकारी भाषाशास्त्री की तरह अनुवादक को भी होनी चाहिए।

अनुवाद कार्य के साथ भाषा का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक ‘काल-बोध’ भी जुड़ा रहता है। प्राचीन कृतियों या शिलालेखों के पाठ का अनुवाद करते समय ‘खोए हुए काल की खोज’ भाषा से करनी पड़ती है।

अनुवाद और अर्थविज्ञान

अनुवाद में शब्दों के माध्यम से अर्थगत अभिव्यंजना को अधिकाधिक स्पष्ट किया जाता है। अनुवादक को यह सावधानी अनिवार्य रूप से रखनी पड़ती है कि जिन शब्दों को स्थानांतरित किया जाता है उनके साथ भाषांतर अर्थव्यंजना ज्यों की त्यों अन्तरित हो रही है या नहीं। अर्थात् स्रोत-भाषा में व्यक्त किया गया अर्थ लक्ष्य-भाषा में ठीक वैसा का वैसा अभिव्यक्त हो रहा है अथवा नहीं। इस प्रकार भाषा का अर्थ-तत्त्व अर्थ-विज्ञान से सम्बन्धित हो जाता है। अनुवाद की समस्त सम्प्रेषण क्रियाएं जितनी भाषा और उसके अभिव्यंजना-पक्ष से सम्बद्ध होती हैं उतनी ही या उनसे अधिक मूल पाठ-सामग्री के विचार या लक्ष्य से भी। मूल कथ्य सामग्री जिस या जिन विषयों की है उन विषयों के सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और प्रायोगिक अर्थ-तत्त्व का ज्ञान अनुवादक के लिए अपेक्षित है।

अर्थ-विज्ञान का मुख्य अभिप्रेत शब्द के वास्तविक अर्थ-व्यापार पर विचार करना है। एक ओर यह भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन है, दूसरी ओर अर्थमूलक परिवर्तनों की परीक्षा का वैज्ञानिक कार्य। फ्रांसीसी विद्वानों ने ऐतिहासिक अर्थ-विज्ञान की अध्ययन-पद्धति का विकास किया और इसी से रचनात्मक अर्थ-विज्ञान की उद्भावना हुई। शब्द मनुष्य की धारणाओं से सम्बद्ध होते हैं और इन्हीं धारणाओं से अर्थ-विधान का सम्बन्ध होता है। यदि कालान्तर में धारणाएं बदलती हैं तो शब्दों के अर्थों में अन्तर आ जाता है। इसलिए अनुवादक और अर्थ-विज्ञान के अध्येता दोनों को ही भाषा की संरचनात्मक प्रवृत्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। भाषा-विज्ञान में यांत्रिक अनुवाद पर भी बहस हुई है और यह प्रश्न उठाया गया है कि कोशगत और व्याकरणिक अर्थों में परस्पर क्या सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'वान्' प्रत्यय हिन्दी में इसी अर्थ में ग्रहीत हुआ। एक ओर यह हिन्दी में अधिकारी के अर्थ में चलता है जैसे धनवान, विद्यावान, बुद्धिवान और दूसरी ओर यह प्रत्यय 'चालक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा—पीलवान, गाड़ीवान, कोचवान आदि। अतः अनुवादक को इन प्रयोगों में अर्थ निश्चयन हेतु प्रसंग के महत्त्व की ओर जाना पड़ता है। भाषागत प्रयोगों में प्रसंग

का वही स्थान है जो समाजशास्त्र, इतिहास और भूगोल में परिवेश और परिस्थिति का होता है। प्रसंगों की विधिवत् समीक्षा से ही अनुवादक अनेकार्थता, समानता, सादृश्यमूलक समस्याओं का समाधान कर सकता है।

अनुवादक को संरचनात्मक अर्थ-विज्ञान से बहुत सहायता मिल सकती है। भाषा के बाह्य पक्ष में ध्वनि, रूप और वाक्य को स्थान मिलता है किन्तु भाषा के आन्तरिक अर्थमूलक अध्ययन में संरचनात्मक अर्थ-विज्ञान अपनी व्यावहारिकता सिद्ध करता है। प्रत्येक भाषा की अपनी आर्थी-संरचना होती है जिसे अध्ययन प्रक्रिया के तीन स्तरों से संकेतित किया जा सकता है—

- (1) कोशीय शब्द
- (2) व्याकरणिक रूप
- (3) आर्थी अभिव्यंजना

उदाहरण के लिए 'विद्यार्थी' शब्द का कोशगत अर्थ है विद्या ग्रहण में संलग्न, व्याकरणिक रूप है कर्त्ता-कर्ममूलक, आर्थी व्यंजना है अन्वेषी, जिज्ञासु, होनहार आदि। आर्थी विशेषताओं के कारण अनुवादक को भाषा की वाक्पद्धति (Idiom) को विशेष महत्त्व देना पड़ता है।

अनुवादक की प्रथम समस्या तो है अर्थप्रेषण के लिए दूसरी भाषा में प्रसंग, संदर्भ और प्रसंगानुकूल अर्थ-निर्धारण, दूसरी है अर्थ-निर्धारण में ध्वनि प्रतीकों का विशिष्टतावाची बोध तथा तीसरी है स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा में लाते समय उसके अर्थ-निर्धारण की समस्या।

इस अर्थ-निर्धारण की समस्या से निपटने के लिए अनुवादक को अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि एक ही कृति अपने अनेक सहृदयों को अलग-अलग समय में अलग-अलग अर्थबोध कराती है अर्थात् कृति में अनेक अर्थ स्तर-निहित होते हैं, जिन्हें हर एक कोटि का सामाजिक अपनी-अपनी समझ के अनुसार ग्रहण करता है जैसे 'रामचरितमानस' सामान्य पाठक के लिए मात्र भक्तिभाव तथा कथा का अभिधार्थ है किन्तु विशिष्ट बौद्धिक स्तर वाले पाठकों के लिए उसके अनेक स्तर हैं जो प्रबुद्ध से प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए आज भी चुनौती है। ऐसी स्थिति में इस कृति का अनुवाद अर्थ के स्तर पर बहुत जटिल प्रक्रिया है क्योंकि यह 'भावभेद रस-भेद अपारा' वाली कृति है। इसी प्रकार अन्य कृतियों के अर्थ-निर्धारण में अनुवादक किन-किन बातों का ध्यान रखे, यह प्रश्न आज हल तो नहीं हो पाया है किन्तु अर्थ-निर्धारण के लिए कुछ तथ्य प्रकाश में आए हैं :

(1) अर्थ की सांकेतिक प्रक्रिया—अनुवादक को अर्थ की सांकेतिक प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। हर शब्द अर्थ का कोई चित्रात्मक या बिम्बात्मक रूप छिपाए होता है। शब्द से चित्र मानसपटल पर आता है और वस्तु का अभिज्ञान होता है। बोलने और समझने में समर्थ पाठक की भाषा इसी बिन्दु पर संकेतात्मक

और प्रतीकात्मक हो जाती है, जैसे एक वाक्य है—‘आनन्दभवन देश का पवित्र स्थान है’ अब अनुवादक को इस वाक्य को पं० मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल के इलाहाबाद स्थित भवन से जोड़ना होगा। ऐसा न करने से, न जोड़ने पर अर्थ भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना है।

(2) शब्द-शक्तियाँ और अर्थ-तत्त्व—अर्थ-निर्धारण की दृष्टि से शब्द-शक्तियाँ तीन हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इसी दृष्टि से शब्द के तीन प्रकार हैं—वाचक, लक्षक और व्यंजक। स्फोटगत ध्वनियों से शब्द-सृष्टि होती है और शब्द के उच्चारण से अर्थ का बोध होता है।

(क) अभिधा—शब्द की अभिधामूलक भंगिमा परम्परानुमोदित एवं रूढ़ अर्थ से सम्बन्धित होती है। शास्त्र में अभिधा को समझने के आठ साधन बताए गए हैं—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त-वाक्य, व्यवहार, वाक्य शेष, विवरण और सिद्ध पथ का सान्निध्य। किन्तु इन सब में व्यवहार ही मुख्य साधन कहा गया है। उदाहरणार्थ ‘वह प्रवीण व्यक्ति है।’ इसके अनुवाद में शब्द के कोशार्थ का संरचनागत अर्थ ही चल जाता है। इसी प्रकार एक और वाक्य है—‘वह बुद्धिमान व्यक्ति है’, इसका अंग्रेजी में अनुवाद होगा—‘He is a wise person’ अनुवाद करने पर भी दोनों भाषाओं में इसका सामान्य अर्थ एक ही रहता है।

(ख) लक्षणा—अभिधेय अर्थ का योग होने पर भी लक्षणा से अर्थ बदलता है। अभिधा शब्दार्थ का वाच्यार्थ सम्बन्ध है किन्तु लक्षणा का लक्षण है मुख्यार्थ का बाधित होना। अर्थात् जिस अर्थ के समझने में मुख्य अर्थ बीच में पड़ता है उसे लक्षणा कहते हैं। उदाहरणार्थ --

‘गंगायां घोषः’ अर्थात् ‘गंगा में कुटी है।’ गंगा में कुटी कैसे हो सकती है? अतः इसके निवारणार्थ ‘गंगा’ शब्द में लक्षणा के द्वारा अर्थ लिया गया—गंगा तट पर कुटी है? ‘घोष’ शब्द में लक्षणा के द्वारा यह अर्थ भी ठीक हो सकता है—‘गंगा में मगर है।’ किन्तु उससे वक्ता के तात्पर्य की सिद्धि न होगी। अनुवादक को यह भी ध्यान रखना होगा कि लक्षणा रूढ़ि के आधार पर है या प्रयोजन के आधार पर।

(ग) व्यंजना—प्रसिद्धाथ को अभिधा और लक्षणा परम्परा सम्बन्ध से स्पष्ट करती हैं किन्तु वे अप्रसिद्ध अर्थ का बोध कराने में समर्थ नहीं होतीं। इस स्थिति में व्यंजना का कार्य दोहरा होता है। यह दोनों प्रकार के अर्थों का बोध कराती है। इसलिए व्यंजना के द्वारा शब्द अर्थ-व्यंजक बनते हैं। व्यंजक ही ध्वनि है। व्यंजना का अनुभव शब्द, शब्दार्थ, पद, पद के एक भाग, वर्ण, रचना-स्वभाव आदि में सर्वत्र व्याप्त होता है। इसलिए बड़े से बड़े अनुवादक को उसे पकड़ने में चूकने का खतरा रहता है। उदाहरणार्थ ‘प्रसाद’ की कविता की प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं—‘बीती विभावरी जाग रही !

अम्बर पनघट में डुबी रही ताराघट उषा नागरी।’

यहां कवि का वाच्यार्थ है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री से कह रही है कि तारों-भरी रात्रि समाप्त हो गई है, तू जाग जा। किन्तु प्रतीयमान अर्थ इससे भिन्न है—‘युगीन निराशा समाप्त होकर आशा का नवजागरण हो रहा है।’ यह अर्थ यहां व्यंजित अर्थ है।

(3) प्रसंगार्थ—वाक्य में संरचनागत अर्थ से भिन्न एक अर्थ और होता है जिसे प्रसंगार्थ कहा जा सकता है। इस अर्थ में भौतिक योजक शब्द (Physical component words) गौण होते हैं। वक्ता की मानसिकता पर देश-काल का प्रभाव छाया रहता है। उदाहरणार्थ—‘मैंने धीरेन्द्र वर्मा को बोलते हुए सुना है।’ इस वाक्य में ‘बोलते हुए’ पद का विशिष्ट अर्थ-बोध है क्योंकि यह अर्थ न तो कोशगत है और न ही व्याकरणिक। इसमें वक्ता धीरेन्द्र वर्मा का प्रभावशाली भाषणकर्त्ता-व्यक्तित्व ध्वनित होता है। इस वाक्य का आशय यह है कि धीरेन्द्र वर्मा बड़े ही सफल वक्ता थे। इस वाक्य का अनुवाद करते समय प्रसंगार्थ का तिरस्कार नहीं किया जा सकता। इस वाक्य का अंग्रेजी अनुवाद यदि किया जाए—‘I have heard Dharendra Verma speaking’ तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। अंग्रेजी में इसका अनुवाद किया जाना चाहिए—‘I have heard Dharendra Verma delivering lecture।

(4) समरूपतामूलक प्रतिक्रिया का सिद्धान्त—भाषा में शब्दों की अपेक्षा उनकी अर्थगत प्रतिक्रियाओं (Semantic reactions) पर ध्यान दिया जाता है। शब्द या ध्वनि-प्रतीक अर्थ-बोधक चिह्न मात्र होते हैं जैसे एक राजनीतिज्ञ कहता है—‘समस्याओं के समाधान के लिए बूढ़ों को राजनीति से हटा दिया जाना चाहिए।’ इस कथन पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रिया होगी। लेकिन इसका मूल अर्थ यह है कि असामाजिक स्थितियां उत्पन्न करने वाले बूढ़ों को अलग कर दिया जाना चाहिए। अतः अनुवाद करते समय समरूपतामूलक प्रतिक्रिया वाले सिद्धान्त के द्वारा अधिकांश अर्थ-विकृतियों (Semantic malfunctionings) की व्याख्या की जा सकती है।

(5) स्थान-भेद—स्थान-भेद से कभी-कभी अर्थ-भेद हो जाता है। अलग-अलग स्थानों पर एक ही शब्द को अलग-अलग अर्थों में प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ ‘भोग’ शब्द ब्रज प्रदेश में भगवान के प्रसाद के लिए प्रयुक्त होता है। ‘बाल-भोग’ और ‘चरणामृत’ का नाम सभी ने सुना होगा। किन्तु दिल्ली में ‘भोग’ शब्द ‘श्राद्ध भोग’ के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार ‘सड़ना’ शब्द हिन्दी तथा पंजाबी में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। हिन्दी के अर्थ के अनुसार ज्यादा पक जाने के बाद फल सड़ जाता है किन्तु आग पर ज्यादा सेंक दी जाने के बाद जो चीज जल जाती है उसे पंजाबी में ‘सड़ना’ कहा जाता है। ऐसे स्थानिक प्रयोगों का ध्यान रखना अनुवादक के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार ब्रज क्षेत्र में 'लला' या 'लल्लू' शब्द दुलार का सूचक है। छोटे बालकों को प्रायः इस नाम से बुलाया जाता है। इसी अर्थ में यह नाम सूचक भी होता है। हिन्दी के गद्य प्रवर्तकों में 'लल्लू जी लाल' के नाम से हम लोग भली-भांति परिचित हैं लेकिन आजकल खड़ी बोली में लल्लू शब्द 'बुद्धू' के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

(6) पर्यायवाची शब्द—पर्यायवाची शब्दों के अनुवाद में अत्यधिक सावधानी अपेक्षित होती है; क्योंकि प्रत्येक प्रयोग के साथ अभिसूचक सदस्यों (Index members) का योग होता है। उदाहरणार्थ कमल, पंकज, जलज, नीरज, सरोज आदि शब्द स्थूल अर्थ में एक ही वस्तु का बोध कराते हैं। किन्तु ये सभी शब्द सर्वथा समान अर्थ सूचित नहीं करते। इसी प्रकार अंग्रेजी के beautiful, handsome, pretty शब्द स्थूल अर्थ में तो एक-से हैं किन्तु इनमें सूक्ष्म अर्थ-भेद है जिनकी पकड़ अनुवादक को होना बहुत ही जरूरी है। अतः अनुवादक को समरूपतामूलक प्रतिक्रिया के सिद्धान्त के द्वारा पर्यायवाचिता से बचना चाहिए क्योंकि एक शब्द दूसरे का शत-प्रतिशत पर्यायवाची नहीं हो सकता।

(7) मिथ अथवा मिथक—कवि और विद्वानों ने 'मिथ' में निहित संभावनाओं का प्रयोग अपने-अपने ढंग से किया है। यूरोपीय वाङ्मय के शब्द 'Myth' को अभिव्यक्त करने वाला कोई शब्द हिन्दी में नहीं है। कभी-कभार इसके लिए 'पुरावृत्त' 'पुराण कथा', 'देवकथा' आदि अर्थ-संकुचित अनुवादों से काम चलाया जाता है। प्रत्येक देश का साहित्य अनगिनत मिथों से पूर्ण होता है। मिथ संस्कृति विशेष की विशेष देन होते हैं और उनमें किसी भी जाति का अवचेतन मन सुरक्षित रहता है। अतः मिथ एक प्रकार से आदिम युगीन भाषा और साहित्य है। मिथ में कथा का अंश रहता है। बिना कथा के उसकी कल्पना असम्भव है और उस कथा को सांस्कृतिक संदर्भों में जानने बिना उसका अनुवाद सम्भव नहीं है। इसलिए साहित्य के अनुवादक को मिथकों का विशेष ज्ञान होना जरूरी है। फ्रेजर और टी० एस० इलियट ने यह बात बार-बार दोहराई है। कॉलरिज की कविता 'Rhyme of the ancient Mariner' का अनुवाद कोई भी व्यक्ति तभी कर सकता है जब वह मिथ को भली-भांति समझता हो भले ही वह भाषा का कितना ही बड़ा जानकार क्यों न हो। इसी प्रकार मीरा की कविता है—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।' यहां 'गिरधर' कृष्ण का पर्याय मात्र नहीं है वह ब्रजवासियों का कण्ठ-निवारक गिरधर है जिसके साथ इन्द्र-कृष्ण की कथा जुड़ी है। ऐसी स्थिति विशेष में मिथिकल शब्दों का अनुवाद न करके लिप्यंतरण (Transliteration) करना ही बेहतर होगा।

(8) सांस्कृतिक स्रोत—भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। इसलिए भाषा का शब्दार्थ संस्कृति-सापेक्ष होता है। इस कारण विभिन्न भाषाओं के स्वरूप और संरचना स्वयमेव अलग-अलग होते हैं। अतः किन्हीं दो भाषाओं

में मिलते-जुलते शब्द तो मिल जाते हैं किन्तु बिल्कुल समान अर्थों को व्यंजित करने वाले शब्दों का मिलना बड़ा ही कठिन होता है। उनकी अर्थच्छायाओं में भेद होता है। उदाहरणार्थ हमारी वामदेवी सरस्वती है। काव्य-सृजन के आरम्भ में सरस्वती का आह्वान करने की परम्परा है। यूनान की काव्य-प्रेरणा-दायिनी देवी 'Muse' है। कवि होमर ने उसकी वन्दना की है। सरस्वती तथा Muse दोनों ही काव्य-प्रेरणा की देवियां हैं किन्तु दोनों अलग-अलग संस्कृतियों की प्रतीक हैं। तब तक अनुवाद में 'Muse' के स्थान पर 'सरस्वती' और 'सरस्वती' के स्थान पर 'म्यूज' लिखना अनुचित नहीं होगा जब तक कि ऐसा करने से दोनों की जातीय विशिष्टता श्रुष्ट न हो।

इसके अतिरिक्त हर एक संस्कृति में रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, आचार-विचार, जाति-कुल, धर्मोपासना के विधि-विधान एवं भौगोलिक स्थितियां विशिष्ट एवं निजी होने के कारण उसकी भाषा-प्रयोग विधि भी विशिष्ट होती है। ऐसे प्रयोगों को भाषांतरित करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, त्रिमूर्ति की धारणा हिंदू संस्कृति की धुरी है। मिथकों, निजंधरी कथाओं (Legends), लोक-विश्वासों के सांस्कृतिक प्रतीकों में इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। संस्कृति के ऐसे आदि बीज-बिम्बों का अनुवाद बड़ा ही कठिन होता है। इनका लिप्यंतरण ही बेहतर होता है।

(9) देशकाल—अनुवादक को इस बात की सतर्कता रखनी चाहिए कि स्रोत-भाषा की सामग्री किस देश अथवा काल की है। कुछ शब्द ऐतिहासिक घटनाओं के साथ जन्मते हैं और कालान्तर में उनका अर्थ बदलने लगता है जैसे हिन्दी साहित्य के भक्ति-आन्दोलन काल में 'विभक्त' शब्द का अर्थ होता था विशेष प्रकार का भक्त, किन्तु आज इस शब्द का अर्थ है 'पृथक-पृथक'।

(10) संदर्भ—संदर्भ अर्थ-निर्धारण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि संदर्भच्युत हो जाने पर बात अपने लक्ष्य से ही भटक जाती है और शब्द के स्तर पर संदर्भ को समझकर ही अर्थ-ग्रहण किया जाता है, जैसे यह संदर्भ के अनुसार ही समझा जा सकेगा कि 'हरि' शब्द भगवान के लिए या बन्दर के लिए या व्यक्ति-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः अनुवाद करते समय सही संदर्भ पकड़ पाना और लक्ष्य-भाषा में उसके अनुसार समानार्थक शब्द खोज पाना अत्यन्त आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी का शब्द है 'Receipt'। अब हिन्दी में इसका अर्थ हम संदर्भ के अनुसार ही निर्धारित करेंगे और तदनुसार इसका अर्थ 'प्राप्ति' या 'आवती' या 'रसीद' या 'आय' लिखेंगे।

(11) लिंग—अर्थ-निर्धारण में लिंग, वचन तथा समास की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है जैसे संस्कृत में 'गो' शब्द (स्त्रीलिंग) में इसका अर्थ 'गाय' होता है तथा पुलिग में 'बैल'। वृक्षवाची शब्द पुलिग होने पर वृक्ष के वाचक होते हैं और

नपुंसक लिंग होने पर फल के, जैसे 'पीलुफलम्' ।

(12) वचन—कुछ शब्दों का एकवचन रूप में प्रयुक्त होने पर कुछ अर्थ होता है तथा बहुवचन हो जाने पर कुछ और जैसे Wood—लकड़ी तथा Woods—जंगल । इस बात के सम्बन्ध में बड़ी ही सावधानी अनुवादक को रखनी चाहिए ।

(13) समास—वाक्य में पद पृथक्-पृथक् रहने पर सामान्य अर्थ का बोध कराते हैं किन्तु समास होने पर विशेष अर्थ का बोध कराते हैं । समास में समुदाय का अर्थ प्रधान होता है पद का अर्थ नहीं । उदाहरणार्थ 'ओदन' और 'पाकी' से शब्द बनाया गया 'ओदनपाकी' । इसका अर्थ औषधि के लिए रूढ़ है । समस्त पदों को अलग करते ही अर्थ बदल जाता है । इसका अनुवाद समस्त पदों के रूप में ही होना चाहिए । अलग-अलग पदों के रूप में नहीं । संस्कृत में प्रायः ऐसे समास भी होते हैं जिनमें एक शब्द ही समास के कारण एक से अधिक का अर्थबोध कराता है । जैसे 'पितरौ' का अर्थ है माता-पिता, 'भ्रातरौ' का अर्थ है भाई-बहन । अंग्रेजी में 'पितरौ' के समकक्ष 'Parents' है ।

(14) वाच्य-भेद—वाच्य-भेद से धातुओं के अर्थों में भेद हो जाता है । जैसे 'मिद्' धातु का 'टूटना' और 'तोड़ना', 'पच' धातु का 'पकना' और 'पकाना' अर्थ होता है । 'भिन्नति काष्ठम्', 'भिद्यते काष्ठम्' धातु में इस प्रकार के अर्थ-भेद का ज्ञान क्रिया के समस्त पद से होता है । यदि अनुवादक का ध्यान इस सम्बन्ध में चूक जाता है तो अर्थ में गड़बड़ी हो जाती है ।

(15) स्वर-भेद—स्वर या वर्ण के भेद से शब्द के अर्थ में भेद ही नहीं होता अपितु अर्थ कभी-कभी बिल्कुल विपरीत भी हो जाता है । स्वर-भेद से वह शब्द उस अर्थ का बोधक नहीं रहता जिसका मूलतः था । इसलिए उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरों का ज्ञान आवश्यक है । संस्कृत में इसे इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि मंत्रोच्चार में थोड़ी-सी त्रुटि रह जाने पर पाप लगने की कल्पना की गई । 'अमित्र' शब्द बहुव्रीहि समास से अन्तोदात्त है और इसका अर्थ है मित्र रहित । तत्पुरुष समास में 'मि' उदात्त होने पर इसका अर्थ है शत्रु ।

(16) उपसर्ग संयोग—उपसर्ग के संयोग से अर्थ-भेद होता है क्योंकि उपसर्गों के संयोग से शब्दों और धातुओं के अर्थों में भारी अंतर आ जाता है । कभी-कभी शब्द अपने अर्थ से विपरीत अर्थ का भी बोध कराने लगता है । उपसर्ग के द्वारा धातु का अर्थ बहुत दूर चला जाता है । उदाहरणार्थ 'स्था' धातु का अर्थ है रुकना किन्तु प्रस्थान में इसका अर्थ विपरीत है—चले जाना । इसी प्रकार 'संस्थान', 'अनुष्ठान' और 'निष्ठान' में इसका भिन्न अर्थ देखा जा सकता है ।

(17) प्रकरण-भेद—वाक्य-प्रकरण, अर्थ-औचित्य और देश-काल से शब्दों के अर्थों में भेद हो जाता है । किन्तु एक ही शब्द का विभिन्न वाक्यों, विभिन्न

प्रकरणों आदि में कुछ भिन्नता लिये अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार एक ही शब्द के अर्थों में भेद हो जाता है। प्रकरण-भेद से धातुओं के अर्थों में परिवर्तन हो जाते हैं, जैसे—

- (i) 'आदित्यमुपतिष्ठते'—आदित्य की उपासना करता है।
- (ii) 'रथिकानुपतिष्ठते'—रथिकों का साथ करता है।
- (iii) 'गंगा यमुनामुपतिष्ठते'—गंगा यमुना से मिलती है।

देश-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है। अनेक भाषाओं के शब्दों का संग्रह करने पर यह बात पता चलती है—संस्कृत में 'न' का अर्थ है 'नहीं', किन्तु चीनी में 'ना' का अर्थ है 'वह' और रूसी भाषा में इसका अर्थ है 'पर' या 'ऊपर'।

(18) साहचर्य—साहचर्य के कारण एक शब्द का अन्य अर्थ में प्रयोग होता है। 'सूर्य' को 'उषा' के साहचर्य से 'वत्स' (बछड़ा) नाम से निर्दिष्ट किया गया है। साहचर्य से अर्थ-विकास के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे—'कृष्णा' शब्द का मुख्यार्थ है 'कृष्ण वर्ण' किन्तु वेदों में 'कृष्णा' शब्द रात्रि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में 'कृष्णा' शब्द का प्रयोग 'द्रौपदी' के लिए हुआ है। इस प्रकार 'कृष्णा' शब्द का अर्थ-संकोच हो गया।

(19) सादृश्य—नानार्थक शब्दों के अर्थ-विस्तार प्रदर्शित करते हुए सादृश्य को मुख्यता दी जाती है, यथा—'पाद' शब्द का मुख्य अर्थ था 'पैर'। उसी के सादृश्य के आधार पर पशु के एक पैर का चतुर्थांश देखकर चतुर्थांश के लिए 'पाद' शब्द का प्रयोग होने लगा। सादृश्य के आधार पर इसका इतना अधिक अर्थ-विस्तार हुआ कि 'खाट' आदि के पावे के लिए एक 'पाद' शब्द चल पड़ा। वृक्ष की जड़ के लिए 'पाद' शब्द प्रयुक्त होता है—'पादय'। अतः अनुवादक को इस सादृश्य का विशेष ध्यान रखना पड़ता है ताकि अर्थ-निर्धारण हो सके क्योंकि शब्द का अर्थ व्यावहारिकता पर आधृत रहता है—'शब्दालोक निबन्धना'।

(20) मुहावरे तथा लोकोक्ति—इन दोनों की पहचान होना अनुवादक के लिए अत्यंत आवश्यक है। हर भाषा के मुहावरे तथा लोकोक्तियां नए तथा निजी भाव और उपमान छिपाए होते हैं। उन्हें ठीक से समझे बिना उनका साहित्यिक मूल्य नहीं समझा जा सकता। उदाहरणार्थ, हिन्दी की कहावत है—'टके की बुढ़िया, नौ टके सिर मुंडाई।' अंग्रेजी में उसका अनुवाद किया गया—'A quarter worth verry, and three quarters to carry' यहां verry और carry की तुकबंदी तो ठीक बैठती है लेकिन हिन्दी की कहावत में जो भारतीय मनोभाव और कुटुम्ब पद्धति निहित है वह अंग्रेजी में अनूदित होते ही लुप्तप्राय हो गई। एक और उदाहरण लें—हिन्दी का शब्द है 'सुहागन'। अंग्रेजी में इसका अनुवाद होगा 'married women'। किन्तु 'सुहागन' कहने पर सौभाग्यपूर्ण स्त्री का जो चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है वह married woman कहने पर नहीं

उपस्थित होता। एक-दो बार तलाक देकर फिर से विवाह करने वाली स्त्री हिन्दी शब्द 'सुहागन' के अंतर्गत नहीं आएगी, वह केवल अंग्रेजी के married woman के अंतर्गत रहेगी। इतालियन कहावत कि 'अनुवादक गद्गार होते हैं' सही नहीं है। 'हेमलेट' की पंक्ति—Frailty thy name is woman का शब्दानुवाद होगा 'चंचलता ! तेरा ही नाम स्त्री है।' यहां शब्दार्थ की दृष्टि से तो अनुवाद सही हो जाएगा। किन्तु वह अर्थ सम्प्रेषित नहीं हो पाएगा जो विशेष संदर्भ में कवि का अभिप्रेत है। मुहावरों और कहावतों के संदर्भ में एक और बात ध्यान देने की है। सामाजिक संदर्भ में बदलाव के साथ भाषा की अर्थ-प्रक्रिया में जो बदलाव आता है उसका सबसे रोचक उदाहरण मुहावरों और कहावतों में ही देखने को मिलता है। स्थितियों के बदलाव के साथ उनमें अर्थ की शक्ति बदलती रहती है।

(21) अर्थ-परिवर्तन—यह नितांत आवश्यक है कि लक्ष्य-भाषा की सामग्री स्रोत-भाषा की पाठ-सामग्री से अर्थ की दृष्टि से भिन्नत्व न प्राप्त कर ले और ऐसा न लगे कि अनुवाद होने के बाद दोनों भाषाओं ने अपने-अपने अर्थ-बोध का अलग-अलग वितान तान लिया है। यदि ऐसा प्रतीत हुआ तो अनुवाद की संगति ही खण्डित हो जायेगी। एक-सी अर्थ वाली अभिव्यक्ति स्रोत और लक्ष्य-भाषा दोनों में सदैव मिल पाना संभव नहीं होता। इसलिए अनुवादक को निकटता या समीपता की तलाश रहती है और वह अनुवादक भाषा की सम्पूर्ण अर्थ-ध्वनियों को शब्दानुवाद में न ढालकर भावानुवाद की ओर प्रवृत्त कर देता है। इस प्रकार अर्थानुवाद एक प्रकार का ठीक-ठीक भावानुवाद है।

अर्थ-विकास के साथ-साथ अर्थ-संदर्भ घटते-बढ़ते रहते हैं। इसलिए भाषा में शब्दों के अर्थों का परिवर्तन स्वाभाविक गति से होता रहता है। शब्द का एक ही अर्थ नियमित नहीं रह सकता। सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक कारण और उनके संदर्भ जैसे-जैसे बदलते रहते हैं, शब्दों के अर्थ-संदर्भ भी बिना बदले नहीं रह सकते। एक समय में एक समाज जिन शब्दों को जो अर्थ देता है, कालांतर में वही समाज उन शब्दों से उस अर्थ को छीनकर या तो उनमें नया अर्थ भरता है या पुराने अर्थ को नष्ट कर देता है। अर्थ-परिवर्तन की इस प्रक्रिया पर अनुवादक का ध्यान हर स्थिति में रहना चाहिए क्योंकि अर्थ-परिवर्तन के पीछे काम करने वाली शक्ति है मानव-मस्तिष्क, और यही कारण है कि शब्दों की अपेक्षा अर्थ में परिवर्तन अधिक जल्दी होता है। शब्दों का काम तो संकेतों और भंगिमाओं के माध्यम से भी चल जाता है किन्तु अर्थ का नहीं चलता। शब्द स्थूल होते हैं और अर्थ सूक्ष्म व्यंजनाओं से गर्भित तथा मनोमय और बौद्धिक भी होता है। यही कारण है कि शब्द के अर्थ-परिवर्तन की दिशाएं निश्चित नहीं की जा सकतीं। किन्तु इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया को अनुवादक भाषा-विज्ञान की अर्थ-प्रक्रिया से समझ सकता है। पाश्चात्य विद्वान ब्रिल ने अर्थ-निर्धारण की तीन

दिशाएं स्वीकार की हैं—

भारतीय निरुक्त और व्याकरणकार भी अर्थ-परिवर्तन की इन तीनों दिशाओं को समझाते रहे हैं—(1) अर्थ-विस्तार (Expansion of meaning) (2) अर्थ-संकोच (Contraction of meaning) (3) अर्थदिश (Transfer of meaning) ।

(क) अर्थ-विस्तार—सामान्य शब्द जब विशेष अर्थ में और विशिष्ट शब्द जब सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है तो अर्थ-विस्तार हो जाता है अर्थात् शब्द अपने शाब्दिक अर्थ में अधिक विस्तार ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल में संस्कृत में 'तेल' शब्द का अर्थ था तिल का सार। बाद में महुआ, अलसी, मूंगफली, सरसों, नारियल आदि सभी के सार को तेल कहा जाने लगा। सामान्य कथन की प्रवृत्ति बराबर बनी रही। बाद में यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि आजकल तेल शब्द का प्रयोग डीजल-पेट्रोल आदि के अर्थ में भी किया जाता है। संस्कृत में गाय खोज लाने को 'गवेषणा' कहते थे। किन्तु आज गवेषणा सभी अनुसंधान कार्य या Research का पर्याय हो गया है।

अर्थ-विस्तार का प्रमुख कारण तो यही है कि जब शब्द सामान्य से विशिष्ट हो जाता है तब उसका प्रयोग अतिशयता से किया जाता है। ऐसी स्थिति में भावों के सादृश्य या रूपात्मक सम्बन्ध के कारण उसमें अर्थ-वैविध्य पैदा हो जाता है क्योंकि शब्द के अर्थ का कोई आकार नहीं होता। अस्पष्टता से भी अर्थ में विकास होता है जैसे 'कादम्बरी' और 'सुरा' आदि शब्द। वस्तु-सादृश्य और लक्षणा से भी अर्थ विस्तार होता है—जैसे आरम्भ में 'गो' शब्द का अर्थ पृथ्वी था किन्तु आज इसके अनेक अर्थ हो गए हैं। आलंकारिक प्रयोगों द्वारा भी अर्थ-विकास होता है—जैसे 'गाय' का प्रयोग सीधे-सादे व्यक्ति के अर्थ में—'लड़की तो बिल्कुल गाय है।' अनुवादक को शब्दार्थ और व्यंजनार्थ दोनों ही पकड़ने होंगे। हिन्दी में 'लोमड़ी' चालाकी का प्रतीक है। 'वह लड़की लोमड़ी है' जैसे प्रयोगों के प्रतीकार्थ पर ध्यान देना होगा।

(ख) अर्थ-संकोच—मानवीय ज्ञानात्मक संवेदना में सूक्ष्मता तथा बौद्धिकता के विस्तार के साथ वस्तु, क्रिया और कर्म की शक्तियों को अभिव्यक्ति देने की सूक्ष्म क्षमता का भी विकास होता है। ऐसी स्थिति सामान्य अर्थ वाले शब्द को विशेष स्थिति में सीमित कर देती है—यही अर्थ-संकोच की स्थिति है। इस स्थिति के भीतर सांस्कृतिक कारणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ब्रील की मान्यता है कि जो राष्ट्र या जाति जितनी विकसित होगी उसमें अर्थ-संकोच उतना ही ज्यादा होगा। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल में श्रद्धापूर्वक किया जाने वाला कोई भी कार्य 'श्राद्ध' कहलाता था किन्तु धार्मिक कार्य से जुड़कर 'श्राद्ध' शब्द मरणोपरांत धार्मिक कर्मकांड का वाची रह गया। हिन्दी की सामान्य भाषा और साहित्य में

प्रचलित 'वेदना' शब्द—'वेदने तू भी भली बनी'—'विद्' धातु से बना जिसका अर्थ है सुख-दुःखात्मक अनुभव । किन्तु सामान्य भाषा में इसका अर्थ है पीड़ा । इस प्रकार संस्कृत के अनेक शब्दों का हिन्दी में आते-आते अर्थसंकोच हो गया—जैसे 'धेनु' का अर्थ होता था दूध देने वाला प्रत्येक पशु; किन्तु हिन्दी में इसका अर्थ केवल गाय है । अर्थ-संकोच कई प्रकार से होता है । समास, उपसर्ग, प्रत्यय और विशेषण के संयोग से भी प्रायः अर्थ-संकोच होता है ।

(ग) अर्थदिश—शब्द का अपने मूल अर्थ से हट जाना अर्थदिश है और जब कभी ऐसा हो जाता है तो अनुवादक को भयंकर कठिनाई का सामना करना पड़ता है । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कालांतर में शब्द का मूल अर्थ ही खो जाता है और सामान्य व्यक्ति को यह पता नहीं होता कि जिस अर्थ को हम भूल चुके हैं वह कभी लोक-व्यवहार का अंग भी था । यह बात निम्नलिखित ठोस उदाहरणों से समझी जा सकती है—

(1) 'गंवार' शब्द का मूल अर्थ था ग्रामीण । किन्तु आज यह शब्द एक गाली बन गया है जिसका अर्थ मूर्ख, असभ्य या जंगली आदि माना जाता है ।

(2) आर्य-ईरानी काल में 'असुर' शब्द देवता का वाचक था । वैदिक काल में भी 'असुर' देवता विशेष के लिए प्रयुक्त होता रहा । किन्तु कालांतर में इसका अर्थ हो गया 'राक्षस' ।

कई बार सामाजिक और राजनीतिक कारणों से भी अर्थदिश जरूरी हो जाता है, जैसे—'देवानांप्रिय' सम्राट अशोक की पदवी थी और इस शब्द का एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ था तथा इसकी स्थिति सामाजिक थी । किन्तु कालांतर में यह शब्द अपने मूल अर्थ से एकदम दूर जा पड़ा और संस्कृति जैसी संस्कारवान भाषा में अर्थ हो गया 'मूर्ख' ।

अलग-अलग परिवारों की भाषाएं अपनी संरचना में भिन्न होती हैं । इसलिए अर्थ की दृष्टि से समानार्थक शब्द मिल पाना अपने आप में ही एक समस्या होती है । यही कारण है कि अनुवाद करते ही एक भाषा के संकेतार्थ दूसरी भाषा के संकेतार्थों से दूर पड़ जाते हैं । इसलिए सदैव इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि पाठ-सामग्री को लक्ष्य-भाषा पाठ में लाते वक्त उसकी अर्थपरक मूल आत्मा सुरक्षित रह सके ।

अनुवाद तथा ध्वनिविज्ञान

स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में पाठ-सामग्री को पुनर्प्रस्तुत करते समय ध्वनियों की विशेष भूमिका रहती है। अर्थ को व्यंजित करने के लिए ध्वनियों का आधार है 'शब्द'। अनुवाद करते समय शब्दों के इस आधार को तीन प्रकार से समझ सकते हैं :

- (1) वे शब्द जिनके अनुवाद समानार्थक मिल जाते हैं।
- (2) वे शब्द जिनके अनुवाद समानार्थक मिलने में कठिनाई होती है।
- (3) वे शब्द जिनका अनुवाद नहीं किया जा सकता।

जिन शब्दों के अनुवाद समानार्थक नहीं मिलते, उन्हें भाव के अनुसार अथवा व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को ज्यों का त्यों या थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ स्रोत-भाषा से ले लिया जाता है। इसीलिए स्रोत-भाषा की सामग्री को लक्ष्य-भाषा में लाते समय ध्वनि-विज्ञान हमारी सहायता करता है। पारिभाषिक शब्द अपने साथ अनेक विधाओं के अनुशासन लिये होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रायः उनके समानार्थक नहीं मिलते। इस बिन्दु पर ध्वनि विज्ञान के एक भेद तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान से अनुवादक को थोड़ी दृष्टि मिलती है। पर यहां वर्णनात्मक ध्वनि-विज्ञान बहुत दूर तक हमारा साथ नहीं देता क्योंकि यह स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की ध्वनियों के आधार को समझाता है। यह आधार किन स्थितियों, संदर्भों और मानव मनोविज्ञान के प्रसंगों से उपजे हैं, यह स्पष्ट करने की क्षमता वर्णनात्मक ध्वनि-विज्ञान में न होकर तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान में होती है। इसलिए अनुवाद में तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान दिशा और दृष्टि इस अर्थ में देता है कि वह स्रोत-भाषा की ध्वनि के लिए लक्ष्य-भाषा की किस ध्वनि को प्रातिनिधिकता दी जाए, इस साम्य और वैषम्य को स्पष्ट करता चलता है कि।

अनुवादक के सामने लगातार यह समस्या आती है कि स्रोत-भाषा की किस ध्वनि के लिए लक्ष्य-भाषा की किस ध्वनि को आदर्श मानकर ग्रहण करे। ऐसी स्थिति में उसे तुलनात्मक ध्वनि-विज्ञान से स्रोत-भाषा की तुलना अनिवार्य रूप से करनी होगी। इस प्रकार की तुलना करने पर ध्वनि-सम्बन्धी कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(1) भाषा की प्रकृति अलग होने पर भी कुछ ध्वनियां दोनों भाषाओं में समान दृष्टिगत होंगी।

(2) कुछ ध्वनियां लगभग समान दृष्टिगत होंगी।

(3) दोनों भाषाओं की कुछ ध्वनियां एकदम भिन्न होंगी जो स्रोत-भाषा में तो हैं किन्तु लक्ष्य-भाषा में नहीं हैं।

इस प्रकार अनुवाद के सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए इन तथ्यों पर विचार किया जा सकता है।

(1) **समान ध्वनियां**—पूर्णतः समान ध्वनियां भाषाओं में प्रायः कम मिलती हैं। संस्कृत में क् ख् ग् घ् श् य् त् द् प् ब् म्—हिन्दी में भी क् ख् ग् घ् श् य् त् द् प् ब् म्—इसी प्रकार हिन्दी और अंग्रेजी में स (S) व (B) न (N) म (M) व (V) श (Sc) और फ़ (F) व्यंजन समान हैं। समान होने के कारण ऐसी ध्वनियों को स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में लाते समय किसी प्रकार की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।

(2) **लगभग समान ध्वनियां**—यहां पर लगभग समान ध्वनियों से हमारा तात्पर्य ऐसी ध्वनियों से है जो कुछ दृष्टियों से तो समान हैं किन्तु कुछ दृष्टियों से असमानता रखती हैं जैसे संस्कृत 'न' दंत्य हैं किन्तु हिन्दी 'न' वत्स्य है। उसी प्रकार पंजाबी की घ् भ् ध्वनियां हिन्दी की घ् भ् ध्वनियों के लगभग समान होती हैं पर हिन्दी के 'भाई' और 'घर' का उच्चारण पंजाबी में अलग ढंग से होता है। अनुवाद करते समय स्रोत-भाषा की ऐसी ध्वनियों के लिए लक्ष्य-भाषा में प्राप्त लगभग समान ध्वनियों का प्रयोग ही उचित है। इनके लिए यदि अनुवादक अन्य कोई मार्ग खोजना चाहेगा तो गलती होने की सम्भावना है, क्योंकि ये ध्वनियां कहीं-न-कहीं प्रयोग-विधि पर भी टिकी हैं।

(3) **भिन्न ध्वनियां**—सुनने और बोलने के स्तर पर जो ध्वनियां भिन्नत्व रखती हैं, उन्हें भिन्न ध्वनियां कहते हैं। यहां यह ध्यान रखना है कि ध्वनि-विज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य के मुंह से निःसृत ध्वनियों के विवेचन-विश्लेषण एवं वर्गीकरण से है, लिखित भाषा-रूप से इसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। लिखित रूप का सम्बन्ध वर्णों से है और वर्ण एवं ध्वनि में अन्तर है, इस तत्त्व को भली-भांति समझना चाहिए। क्योंकि अनेक भाषाओं में एक ध्वनि के कई प्रतीक होते हैं—जैसे 'क' की ध्वनि के लिए अंग्रेजी में 'k', 'c' और 'q' तीन प्रतीक हैं। फ़ारसी अथवा उर्दू की लिखावट में 'स' ध्वनि के लिए 'से', 'स्वाद' और 'सीन' तीन प्रतीक हैं। लेकिन इस समस्या का समाधान ध्वनि-लिपि द्वारा किया जाता है जिसमें एक ध्वनि को एक संकेत द्वारा व्यक्त किया जाता है अरबी की 'जोय', 'ज्वाद', 'जाल' आदि ध्वनियां हिन्दी के सामान्य 'ज' से भिन्न हैं, किन्तु हिन्दी में उनके लिए 'ज' का ही प्रयोग किया जाता है। क्योंकि 'ज' ध्वनि उनसे मिलती-जुलती है।

अनुवादक को चाहिए कि ऐसी स्थिति में लक्ष्य-भाषा में प्रचलित ध्वनि का ही प्रयोग करे। ऐसे ही अंग्रेजी के 'k' 'c' 'q' के लिए हिन्दी में 'क' ही प्रयुक्त किया जाता है।

स्रोत-भाषा की ध्वनि या उससे मिलती-जुलती ध्वनि का लक्ष्य-भाषा में अभाव भाषाओं की ध्वनिपरक भिन्नता के कारण होता है। कुछ ध्वनियां ऐसी होती हैं जो स्रोत-भाषा में तो होती हैं किन्तु लक्ष्य-भाषा में नहीं। ऐसे ध्वनिपरक शब्दों को लक्ष्य-भाषा में लाते समय अनुवादक को बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ता है। जैसे तमिल और मलयालम की विशेष प्रकार की ध्वनि 'ल'—जिसका उच्चारण 'ळ' के निकट होता है—हिन्दी में नहीं है। 'ळ' मराठी में तो प्रचलित है किन्तु हिन्दी में नहीं। ऐसे ही हिन्दी की उ, ठ ध्वनियां रूसी या फ्रांसीसी में नहीं हैं। अनेक भारतीय भाषाओं की ट् ठ् थ् ध् फ् भ् महाप्राण ध्वनियां फ्रांसीसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में नहीं हैं। ध्वनि की दृष्टि से यह एक ऐसी स्थिति है, जिसका समाधान कठिन होता है। यह समस्या उच्चारण सम्बन्धी समस्या है। इस समस्या को सुलझाने के अनेक समाधान सुझाए जाते हैं। एक समाधान जो प्रायः सुझाया जाता है वह यह है कि यदि श्रोता को समझाने में कोई कठिनाई न हो तो मौखिक अनुवाद में ऐसे शब्दों का मूल ध्वनियों के उच्चारण के समान ही उच्चारण किया जा सकता है। यदि मूल ध्वनियों में उच्चारण-सम्बन्धी कठिनाई हो तथा प्रतीत हो कि लिखित रूप में मूल उच्चारण देने की कोई संगति नहीं है तो इस प्रकार की ध्वनि को लक्ष्य-भाषा की निकटवर्ती ध्वनियों में ढाल दिया जाता है या सरलीकृत कर दिया जाता है। अनुवाद में इस प्रकार का लचीलापन तो अपनाया ही जाना चाहिए जैसे तमिल के विशेष 'ल' का उच्चारण हिन्दी में 'ल' के रूप में होता है। हालांकि परिवर्धित देवनागरी वर्णयालय में इसके लिए—'ल' वर्ण शामिल कर लिया गया है।

अन्य भाषाओं से लिये जाने वाले शब्द—अनुवाद करते समय जो शब्द मूल भाषा से ज्यों के त्यों या किंचित ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ लिये गए हैं, उनके उदाहरण सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में मिलते हैं। उनके अन्तर्गत व्यक्तियों, स्थानों, पुस्तकों, संस्थानों आदि के नाम तथा पारिभाषिक शब्द आदि आते हैं। हिन्दी में आए इस प्रकार के शब्द निम्नलिखित उदाहरणों में देखे जा सकते हैं—अरस्तू (Aristotle), प्लातोन या प्लेटो (Plato), एचिलीस, एचिलस, (Achilles), अगथां, अगथान (Agathan), टालस्टाय, तोलस्तोय (Tolostoy), आरगोस (Argos), कुरान (कुरआन), इयोन (Ion), इलियड (Iliad), फ्रांसीसी (French), जर्मन (German), अमरीका (America), लन्दन (London), मस्क्वा, मास्को (Mascow), रेस्त्रां (Restaurant), आदि। इसी तरह लिये गए पारिभाषिक शब्द हैं—इंजीनियरी (Engineering), वोल्ताज (Voltage).

बैक्टीरिया (Bacteria), ब्यूरो (Bureau), वाउचर, (Voucher), बजट (Budget), स्टिबनाइट (Stibnite), जूरी (Jury), एटलस (Atlas), आदि।

इसी प्रकार अंग्रेजी में अन्य भाषाओं में आए तमाम शब्द हैं—Agenda, Souvenir, Cafe, Ayis, Iris (g) Stigma (Greek) Radias (Latin), Jenus (Latin), Focus (Latin) Thorax (Greek)। लिप्यन्तरण करने की यह विधि आज इसलिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है कि सभी भाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली को ज्यों का त्यों लिप्यन्तरित कर लिया गया है। लिप्यन्तरण करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

(1) ध्वनि की दृष्टि से शब्द के उच्चारण पर ही हमें ध्यान केन्द्रित करना चाहिए—वर्तनी पर नहीं क्योंकि बहुत से शब्दों की वर्तनी तथा उच्चारण-रूप में भिन्नता होती है; वे लिखे और तरह से जाते हैं और बोले और तरह से जाते हैं। वर्तनी के अनुसरण में उनके लिप्यन्तरण को पहचानना कठिन हो जाएगा—जैसे एक शब्द है Pneumonia—इसे 'निमोनिया' उच्चरित किया जाता है। इस दृष्टि से अनुवादक को इसका 'निमोनिया' उच्चारण ही ग्रहण करना चाहिए, वर्तनी पर नहीं जाना चाहिए। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति के नेता Rousseau का उच्चारण 'रूस्तो' है। इसे उच्चारण को इसी रूप में रखना चाहिए, क्योंकि हिन्दी में इस रूप में इसका प्रचलन काफी हो चुका है।

(2) यदि स्रोत-भाषा के किसी शब्द का वास्तविक उच्चारण में अलग तरह का उच्चारण लक्ष्य-भाषा में वेहद प्रचलित हो तो ऐसी स्थिति में भी लोक-प्रचलित उच्चारण ही अनुवादक को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि लोक-प्रचलित उच्चारण को हटाकर अपना उच्चारण ऊपर से थोपना मानव मनोविज्ञान के विपरीत कदम रखना होगा। तब कोई भी समझदार अनुवादक ऐसा क्यों करेगा। वह स्रोत-भाषा में प्रचलित उच्चारण को ही प्रयोग में लायेगा—जैसे अरस्तू का शुद्ध नाम 'अरिस्टाइल' है। किन्तु हिन्दी में 'अरस्तू' ही प्रचलित हो गया है। यूनानी राजा 'अलेक्जेंडर' के लिए 'सिकन्दर' हिन्दी में प्रचलित है, और वही चलना चाहिए। प्रसादजी ने 'अलेक्जेंडर' की ध्वनि पर 'अलक्षेन्द्र' चलाया था, जिसे 'सिकन्दर' के लोक-प्रचलन ने चलने नहीं दिया। अतः लोक-प्रचलन से अनुवादक को नहीं टकराना चाहिए।

(3) एक कठिन समस्या यह भी है कि स्रोत-भाषा के एक शब्द के लक्ष्य-भाषा में अनेक उच्चारण प्रचलित हो जाते हैं, तब अनुवादक किसे ग्रहण करे, किसे छोड़ दे। जैसे अंग्रेजी के 'College' के लिए—कालेज, कॉलेज, कॉलिज, कोलेज, कौलिज आदि शब्द या अंग्रेजी के 'Croce' के लिए 'क्रोचे' तथा 'क्रोसे' शब्दों का प्रचलन। ऐसी स्थिति में स्रोत-भाषा के उच्चारण के समीपवर्ती बहुप्रचलित उच्चारण का चलना ही संगत होगा।

भाषा के आन्तरिक ज्ञान के लिए उच्चारण ध्वनियों पर अनुवादक को हर स्थिति में ध्यान देना चाहिए। भाषा के स्वर-व्यंजन, उनका क्रम, बलाघात, स्वर, लहजे आदि की पकड़ यदि अनुवादक को होती है तो अनुवाद में चार चांद लग जाते हैं। लेकिन यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि स्रोत-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था, लक्ष्य-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था पर 'हावी' न होने पाए। भाषा-वैज्ञानिकों ने ध्वनि-विज्ञान की जिन नवीन पद्धतियों की ओर संकेत किया है, उनसे भी यदि अनुवादक का थोड़ा परिचय हो तो वह काफी गहराई से ध्वनि-सम्बन्धी तमाम सन्दर्भों को ठीक से पकड़ सकता है। ध्वनिग्राम-शास्त्री उन असंख्य प्रकार की ध्वनियों में ऐसी अर्थ-भेदक ध्वनियों को चुनता है जिनसे भाषा गठित होती है। भाषा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने वाली अल्पतम इकाई किसी भाषा की ध्वनि न होकर उसके ध्वनिग्राम ही होते हैं। ब्लूमफील्ड का यह संकेत ध्यान देने योग्य है कि ध्वनिग्राम व्यवच्छेदक (प्रभेदक) ध्वनि-स्वरूप की लघुतम इकाई हैं (A minimum unit distinctive sound feature)। जब दो ध्वनियां समान परिवेश में आती हैं तो वे दो पृथक् ध्वनिग्रामों का निर्माण करती हैं। ध्वनिग्राम के निर्धारण के लिए दो न्यूनतम युग्मों को लेना पड़ता है, यथा—'कला' और 'खल'। इस प्रकार अच्छा अनुवादक सतर्कता रखने पर ध्वनि-विज्ञान से लाभान्वित हो सकता है और होता भी है।

अनुवाद और वाक्यविज्ञान

अनुवाद करते समय स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के बीच की व्यवस्था की तुलना करते हुए वाक्य-योजना पर ध्यान अधिक केन्द्रित किया जाना चाहिए, क्योंकि वाक्य-योजना के त्रुटिपूर्ण विश्लेषण से विशेष विवरणों की रूपान्तर-प्रक्रिया लड़खड़ा जाती है और चयन-प्रक्रिया से उत्पन्न पाठ की क्रमबद्धता सरल से जटिल बनकर व्याघातों में फँस जाती है। भाषा वैज्ञानिक सन्दर्भ में वाक्य विज्ञान अनुवादक को भाषागत व्याघात समझने में सहायक होता है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि की साहित्यिक भाषा और दूसरी ओर सामाजिक विज्ञान के विषयों में प्रयुक्त भाषा या प्रशासनिक, विधिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक विषयों की भाषा में गहरा अंतर होता है। व्यावहारिक रूप से यह सब प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया से सम्बद्ध है जिसमें स्रोत-भाषा के प्रयोग का सामाजिक पक्ष और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि छिपी है। वाक्यों के अनुप्रयोग का वह परिस्थितिगत संदर्भ भी होता है जिससे ग्रहीता सांस्कृतिक-ऐतिहासिक संदर्भ में अर्थ को ग्रहण करता है। अतः वाक्य-योजना को केन्द्र में रखना सर्वाधिक आवश्यक है।

सामान्यतः पाठ कठिन से सरल की ओर न जाकर सरल से कठिन की ओर जाता है। वाक्य-योजना के इस पाठ्य संदर्भ को भाषा वैज्ञानिक आधारभूत संरचना से जोड़कर समझाने का प्रयास करता है और उसका संदर्भ सरल की ओर रहता है, जैसे दो वाक्य हैं—

(1) वह नटखट लड़का है।

(2) वह लड़का नटखट है।

इसमें प्रथम वाक्य को आधारभूत मानने के कारण भाषा वैज्ञानिक सरल और दूसरे वाक्य को व्युत्पन्न मानने के कारण जटिल मानता है। 'वाक्य भाषा की पूर्ण इकाई और लघुतम पूर्ण उपचार है।' (The sentence is the chief unit of speech, it may be defined quite simply as a minimum complete utterance.) अनुवाद करते समय एक भाषा के वाक्यों को दूसरी भाषा की विशिष्ट वाक्य-रचना में रूपान्तरित करना पड़ता है। इस कार्य को करते हुए

स्रोत-भाषा की वाक्य-रचना को लक्ष्य-भाषा की संरचनात्मक और व्यावहारिक प्रकृति के अनुकूल वाक्य-रचना में बदलने की सावधानी बरतनी पड़ती है। जब एक भाषा के वाक्य का दूसरी भाषा के वाक्य में शब्दशः रूपांतरण सम्भव नहीं हो पाता तो अर्थ के स्तर पर अन्तर करना पड़ता है और अर्थ का यह स्तर वाक्य योजना से जुड़ा हुआ है। भाषा में पद उतने महत्वपूर्ण नहीं होते जितने कि वाक्य महत्वपूर्ण होते हैं। स्वयं वैयाकरण भी पदवाद का खण्डन करके वाक्यवाद की स्थापना करते रहे हैं क्योंकि वाक्य की सत्ता पद से पृथक् है। वाक्य से ही अर्थ का ज्ञान और अर्थाभिव्यक्ति होती है, पद या पदों से नहीं। वाक्य में तात्त्विक दृष्टि से पद का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार वाक्य के अर्थ की स्वतन्त्र सत्ता है।

शास्त्र से अलग भाषा एक व्यावहारिक वस्तु है। जब बच्चा मुख से ध्वनियां उच्चरित करता है तब उनका अर्थ वाक्य के रूप में प्रकट होता है, जैसे बच्चा कहता है 'दूध' तो मां पूरा अर्थ ग्रहण करती है कि उसे दूध चाहिए। निश्चित है कि वाक्य भाषा की इकाई है और भाषा वाक्यों का समूह। मनुष्य अपने समस्त सम्बन्धों को भाषा के माध्यम से ही सोचता, समझता और समझाता है। इसलिए अनुवाद करते समय वाक्य को पूरे सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में समझा जाता है। यदि हम इससे काटकर उसे समझने की कोशिश करते हैं तो अर्थगत असंगतियां उत्पन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, 'हेमलेट' का कथन 'To be or not to be that is the question...' 'हेमलेट' की सम्पूर्ण द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों को काटकर यदि देखा जाएगा तो वाक्य-रचना में निहितार्थ की गहराई तक हम नहीं पहुंच पाएंगे। केवल सतही अर्थ ही ग्रहण कर पाएंगे। किन्तु अनुवाद में वाक्य-रचना का गहनतम स्तर पकड़ने का प्रयास होना चाहिए। साहित्यिक वाक्यों में शाब्दिक स्तर से अधिक उनका अर्थ-अनुगूजगत स्तर ही सार्थक प्रासंगिकता रखता है क्योंकि वह सामान्य वार्तालाप का वाक्य होता है। जब कभी अनुवादक इस तरह के वाक्य को अभिधेय बना देता है तो स्रोत-भाषा की अर्थशक्ति का अनुमान पाठक को नहीं लग पाता और लक्ष्य-भाषा की अर्थशक्ति को वह कुछ भी योग नहीं दे पाता। स्रोत-भाषा की वाक्य-योजना में यदि समृद्ध ध्वनि-व्यापार-प्रक्रिया है तो वह अनुवाद के माध्यम से लक्ष्य भाषा में भी समृद्ध रूप से प्रस्तुत हो सकती है।

विज्ञान या विधि ऐसे विषय होते हैं जिनका अर्थ सदैव वाक्य स्तर पर ही ग्रहण किया जाता है। इसलिए इनका अनुवाद करते समय वाक्य को ठीक वैसा का वैसा ही प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा। इससे दूसरी बात, जो सामने आती है वह यह है कि अनुवादक को उस विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए, जिसका अनुवाद वह कर रहा है।

वाक्य भाषा का शरीर पक्ष है और वाक्यार्थ आत्म पक्ष। इस दृष्टि से

वाक्य-विज्ञान वाक्य के उच्चारण पक्ष का भी अध्ययन करता है। वाक्य-विज्ञान में वाक्य अवयवों का परस्पर सम्बन्ध, रूपान्तर-क्रम और वाक्य बनाने की रीति का वर्णन किया जाता है। इस अध्ययन की ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और तुलनात्मक पद्धतियाँ भाषा वैज्ञानिकों को मान्य हैं। वाक्य में रचना-पक्ष को प्रश्रय देने वाले विद्वान रचना, रूप और प्रक्रिया तीनों पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं क्योंकि भाषा के सम्प्रेषण-पक्ष का सम्पूर्ण दायित्व वाक्य पर टिका होता है। चाहे वैयाकरण हो या अनुवादक पद और वाक्य के सम्बन्ध की सही ढंग से जानकारी के लिए उसे दो सिद्धान्तों पर ध्यान देना होगा—अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद। ये सिद्धान्त मीमांसकों ने पद और वाक्य के संबंध के संदर्भ में दिए हैं। अभिहितान्वयवादी पदों को महत्त्व देते हैं। अन्विताभिधानवादी वाक्यों को महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि वाक्यों को तोड़ने से पद बनते हैं। वाक्य की प्रथम सत्ता स्वीकार करने के कारण इन्हें वाक्यवादी भी कहा जाता है। आधुनिक भाषा-विज्ञान वाक्य को भाषा की सार्थक इकाई के रूप में स्वीकृति देता है। इस दृष्टि से अन्विताभिधानवाद का महत्त्व और बढ़ जाता है।

विषय की स्पष्टता से समझने के लिए यहां निम्नलिखित तथ्यों पर विचार किया जा रहा है—

(1) **श्लेषात्मक वाक्य**—श्लेषात्मक वाक्य यदि स्वतंत्र रूप से बोले या लिखे जाएं तो श्रोता या पाठक को उनका अभीष्ट अर्थ-ग्रहण करने में कठिनाई होती है। अन्य वाक्यों के साथ प्रसंगानुकूल ही श्लेषात्मक वाक्य का अर्थ जाना जा सकता है, जैसे—‘सुमन के खेलो सुन्दर खेल’ इसका अर्थ दो प्रकार से निकलता है एक फूल के संदर्भ में और दूसरा सुन्दर मन के संदर्भ में। व्याकरणिक श्लेषात्मक वाक्य में सही अर्थ-ग्रहण करने के लिए प्रसंग निर्देश इसलिए आवश्यक है कि उसके बिना अर्थावगति असम्भव है, जैसे—‘मां ने लेटे हुए बच्चे को दवा पिलाई।’

अब इस वाक्य में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मां भी लेटी हो सकती है और बच्चा भी लेटा हो सकता है। इसी प्रकार ‘दोनों आदमी दौड़ते हुए बच्चों के पास आए।’ इस वाक्य में यह स्पष्ट नहीं है कि दोनों आदमी दौड़ते हुए आए या बच्चे दौड़ रहे थे। इस प्रकार की वाक्य प्रवृत्ति संस्कृत में भी बहुत है। इससे अनुवाद में बड़ी ही कठिनाई होती है। उदाहरणार्थ ‘अयोध्या अटवी: विदधि’ इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(1) जंगल को अयोध्या समझ, (2) अयोध्या को जंगल समझ। अतः श्लेषात्मक वाक्यों का अनुवाद करते समय संदर्भ को ध्यान में रखना चाहिए।

(2) **आंतरिक और बाह्य संरचना**—आंतरिक और बाह्य संरचना से भी वाक्यों के अर्थ सामान्यतः बदलते हैं, जैसे—‘वह नाचने वाली है।’ इस वाक्य के दो अर्थ होंगे—एक तो यह कि वह नाचना अभी शुरू करने वाली है और दूसरा

यह कि नाचना उसका व्यवसाय है। इस प्रकार दो अर्थ निकलने का कारण यह है कि वाक्य-संरचना के भीतर दो वाक्य काम कर रहे हैं। एक वाक्य तो यह काम कर रहा है कि वह नाच प्रस्तुत करने वाली है और दूसरा यह कि नाच उसका व्यवसाय है। अनुवादक को इस प्रकार के अनेकार्थी वाक्यों के संबंध में लगातार सतर्कता रखनी पड़ती है और बाह्य अर्थ से अधिक आंतरिक अर्थ की ओर ध्यान देना पड़ता है, जैसे—‘मुझे साड़ी पसन्द है।’ इस वाक्य में कई आंतरिक वाक्य विद्यमान हैं—मुझे साड़ी पहनना पसन्द है, कोई साड़ी विशेष मुझे पसन्द है, दूसरों को साड़ी पहने हुए देखना मुझे पसन्द है, समस्त वेशभूषाओं में मुझे केवल साड़ी ही पसंद हैं।

(3) **व्यंग्यपरक वाक्य**—व्यंग्यपरक वाक्य प्रायः सभी भाषाओं में जाने-अनजाने मौजूद रहते हैं। उनके अर्थ को समझने के लिए मूल पाठ के प्रसंग पर पुनः-पुनः ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसे ‘प्रसाद’ के नाटक ‘चंद्रगुप्त’ में चाणक्य सम्पूर्ण व्याकरण की अव्यावहारिकता पर व्यंग्य करता है और यह व्यंग्य सावधानी से पढ़ने पर ही पकड़ में आता है—

“भाषा ठीक करने से पहले मैं मनुष्यों को ठीक करना चाहता हूँ।”

नाटकों में वार्तालाप के माध्यम से जीवन की लय को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। इसलिए वहाँ ऐसे व्यंग्यपरक वाक्यों के बहुत से उदाहरण मौजूद होते हैं। उपन्यास में भी ऐसे उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं ‘गोदान’ में जमींदार के पूछने पर कि होरी तुम बहुत कमजोर हो गए हो, होरी का उत्तर ऐसा ही व्यंग्यात्मक है—

‘मोटे वे होते हैं जो दूसरों का खाते हैं !’

इस वाक्य से वर्ग-संघर्ष की चेतना का पूरा अहसास है। प्रसंग को पकड़ने की थोड़ी-सी चूक से ही अनर्थ हो जाता है।

(4) **प्रतीकात्मक वाक्य-रचना**—संरचना किसी भी भाषा का मूलाधार ही नहीं होती, बल्कि प्रतीक कम व्यवस्था को चाहे वह प्राचीन हो या नवीन, दृष्टि में लाती है। जब वाक्य में कोई निश्चित प्रतीक चल पड़ता है तो उसका अनुवाद सीधे नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में उसे टिप्पणी देकर समझाना पड़ता है, जैसे—

सांप।

तुम सभ्य तो हुए नहीं;

नगर में बसना

भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूछूँ—‘उत्तर दोगे?’

तब कैसे सीखा डसना—

विष कहाँ पाया?

सामान्य गद्य के वाक्य-विन्यास को कवि ने यहां तोड़ा है और कविता का विशिष्ट वाक्य-विन्यास अर्थ-योजना के अनुकूल चलाया है। 'तुम सभ्य तो हुए नहीं' पंक्ति यदि गद्य की पंक्ति होती तो कहा जाता 'तुम सभ्य नहीं हुए' किन्तु यहां कवि द्वारा शब्द-क्रम बदल दिए जाने से सम्पूर्ण अर्थ-विधान बदल गया है और वाक्य-योजना शब्दार्थ के लिए शब्द-क्रम पर आधृत हो गई है। यदि इस पंक्ति का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाए—'You have not become civilized' तो अभिप्रेत अर्थ संकेतित नहीं होता, क्योंकि यहां पर 'तो' शब्द का जो ध्वन्यर्थ है वह अंग्रेजी के इस वाक्य में नहीं आ सकता। इसी तरह की स्थितियों में अनुवादक को अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए अलग से आवश्यकतानुसार टिप्पणी देनी चाहिए।

(5) अर्थ-तत्त्व और सम्बन्ध-तत्त्व—दो भाषाओं की रचना-प्रक्रियाओं को समान रूप से अर्थ-तत्त्व और सम्बन्ध-तत्त्व अभिव्यक्त करते हैं। यह ठीक है कि सम्बन्ध-तत्त्वों का कोई अर्थ नहीं होता। फिर भी वे अर्थ-तत्त्वों के साथ सम्पृक्त होकर संरचना को निखारने में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। इसलिए इन दोनों को संचरनाओं का मेरुदण्ड कहा जाता है। जैसे—'मैं घर में लिखता हूं।' इसमें सम्बन्ध-तत्त्व की दो स्थितियां हैं—'मैं' और 'ता' और बाकी 'मैं' 'घर' लिख' 'हूं' सभी अर्थ-तत्त्व हैं। इसलिए भाषा के निकटस्थ अवयवों पर अनुवादक को ध्यान देना चाहिए।

(6) वैज्ञानिक भाषा और भावात्मक भाषा—अंतःकरण में जितनी प्रवृत्तियां होती हैं उन्हीं के अनुसार भाषा-प्रयोग होते हैं। अनेक बार ऐसा होता है कि अंतःकरण की सभी प्रवृत्तियों को भाषा अभिव्यक्त नहीं कर पाती। ऐसी स्थिति में वाक्य-रचना को बड़ा संघर्ष करना पड़ता है। महसूस होता है कि हमें पता तो है किन्तु अभिव्यक्त कैसे करें और अभिव्यक्त हो जाने पर भी वह पूर्णतया सम्प्रेषित कैसे हो। भावात्मक भाषा विन्यास में ऐसी कठिनाई बहुत होती है। वैज्ञानिक विषय के कथन प्रायः मूर्त धरातल पर चलते हैं। रिचर्ड्स के मत से विज्ञान 'कथन' की रचना करता है और काव्य 'आभासी कथन' (Pseudo statement) की। विज्ञानपरक कथन में संदर्भ परक प्रतीकात्मक मूल्य (Referential value) नहीं के बराबर होता है। किन्तु कविता में जो प्रतीकात्मकमूल्य है, वह हमारे मनोभावों (impulses) से जुड़ा होता है। भावात्मक भाषा के अर्थ-तत्त्व चार चीजें समेटते हैं—(1) वाच्यार्थ (Sense), (2) भावना (Feeling), (3) सुर (Tone), (4) अभिप्राय (Intention)। इनमें से 'अभिप्राय' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए शैली-विज्ञान मानता है कि काव्य भाषा का एक विशिष्ट रूप है।

अनुवादक को काव्य के अभिप्राय को पकड़ने के लिए रूप (Form) की बजाए वस्तु (Content) और अर्थ (Meaning) की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए जैसे पीछे अज्ञेय की कविता का उदाहरण दिया गया था उसमें यदि अनुवादक 'रूप' पर ही उलझ जाएगा, तो वह सम्पूर्ण अर्थप्रक्रिया से दूर पड़ जाएगा।

(8) वाक्य के अवयव—जिन पदों और खण्डों से वाक्य बनते हैं उन्हें ही वाक्य का अवयव कहा जाता है। किसी भी वाक्य के अर्थ के सही निर्धारण या ज्ञान के लिए उस वाक्य-विशेष के निकटतम अवयव को जानना अपेक्षित होता है, क्योंकि अर्थ की इकाइयां निकटतम अवयवों पर ही आधृत होती हैं। वाक्य में इनका स्थान दूर रहने पर भी अर्थ की दृष्टि से निकट रहता है। अनुवादक के लिए यह जरूरी है कि वह इन निकटतम अवयवों को पकड़ने में कोई चूक न होने दे। उदाहरणार्थ—

'We visited Zoo, Museum, Children's Park and Red Fort of Delhi.'

इस वाक्य का अनुवाद यदि यह किया जाए कि हमने चिड़ियाघर, म्यूजियम, चिल्ड्रन्स पार्क तथा दिल्ली का लालकिला देखा तो वस्तुतः यह अनुवाद गलत होगा। होना चाहिए—'हम दिल्ली का चिड़ियाघर, म्यूजियम, चिल्ड्रन्स पार्क तथा लालकिला देखने गए।' क्योंकि 'दिल्ली का' सम्बन्ध इन चारों स्थानों से है न कि अकेले लालकिले से। इसी प्रकार एक और वाक्य है—

'Well known experts and professors were invited.'

इस वाक्य का अनुवाद दो प्रकार से हो सकता है—

(1) सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ तथा आचार्य आमंत्रित किए गए।

(2) सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ तथा सुप्रसिद्ध आचार्य आमंत्रित किए गए।

अतः वाक्य में अलग-अलग शब्दों की बजाए निकटतम अवयवों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि वाक्य में इन अवयवों की स्थिति को भलीभांति समझा नहीं जाएगा तो अर्थ समझने में भयंकर भूल होने और परिणामस्वरूप भ्रष्ट अनुवाद हो जाने की सम्भावना है। Is the work done' में 'is' तथा 'done' दूर-दूर रहते हुए भी एक-दूसरे के निकटतम अवयव हैं।

(9) प्रयोग-रीति (Usage)—हर एक भाषा का अपना विशिष्ट मुहावरा होता है। इस विशिष्ट मुहावरे की पहचान उस भाषा विशेष को पढ़ने-लिखने और बोलने से आती है। इसलिए वाक्य-रचना के स्तर पर मुहावरे का विशेष महत्त्व है। वस्तुतः यह किसी भाषा में किसी बात को कहने का ढंग या रीति विशेष होती है। अनुवाद करते समय भाषा की इस प्रवृत्ति की ओर सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए। स्रोत-भाषा में कही गई बात का लक्ष्य-भाषा में अर्थ-बोध करा देना ही पर्याप्त नहीं होता। वह बात इस ढंग से पुनर्प्रस्तुत की जानी चाहिए कि अटपटी न लगे अपितु ऐसा लगे कि वह बात हम मूलतया लक्ष्य भाषा में ही कह रहे हैं। तात्पर्य यह है कि अनुवाद करते समय कथ्य को लक्ष्य-भाषा में अंतरित करते समय लक्ष्य-भाषा का सहज स्वरूप नष्ट नहीं होना चाहिए। भाषा की अभिव्यक्ति का सहज ढंग, उसका वाक्य-विन्यास, संरचनात्मक गठन, उसकी रवानी का ध्यान

अनुवाद करते समय सदैव रखा जाना चाहिए। स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा के भिन्न मुहावरे के बीच सामंजस्य बैठाने की यह प्रक्रिया भाषा की प्रयोग-विधि (Usage) को केन्द्र में रखे बिना असम्भव है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी में कहा जाता है : 'He has taken his examination.' किन्तु हिन्दी में इसके लिए कहा जाएगा : 'वह अपनी परीक्षा दे चुका है।' इसी प्रकार हिन्दी में हम कहते हैं : मेरी घड़ी में साढ़े चार बजे हैं।' किन्तु अंग्रेजी में यदि इसका अनुवाद कर दिया जाए : 'It is half past four in my watch.' तो यह सर्वथा गलत हो जाएगा, क्योंकि अंग्रेजी में कहना चाहिए : 'It is half past four by my watch.'

तात्पर्य यह है कि यदि भाषा की मूल प्रवृत्ति की अवहेलना करते हुए समानार्थी शब्द प्रस्तुत कर दिए जाएंगे तो अनुवाद सर्वथा गलत, बेढंगा और हास्यास्पद बन जाएगा। हमारी यह बात नीचे दिए गए कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगी—

1. वह आराम करने के लिए घर गया।

He went home for resting. (गलत)

He went home to rest. (सही)

2. वह अभी-अभी कलकत्ता से वापस लौटा है।

He has just returned back from calcutta. (गलत)

He has just returned from calcutta. (सही)

3. कार में जगह नहीं है।

There is no place in the car. (गलत)

There is no room in the car. (सही)

इसी प्रकार अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय—

1. He met me on the way.

वह मुझे रास्ते पर मिला। (गलत)

वह मुझे रास्ते में मिला। (सही)

2. She is taking tea.

वह चाय ले रही है। (गलत)

वह चाय पी रही है। (सही)

3. He is playing on Guitar.

वह गिटार पर खेल रहा है। (गलत)

वह गिटार बजा रहा है। (सही)

4. Please sing a song for me.

कृपया मेरे लिए एक गाना गा दीजिए। (गलत)

कृपया मुझे एक गाना सुना दीजिए। (सही)

(10) लिंग—अनुवादक को स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा में प्रचलित व्याकरणिक लिंग के नियमों और प्रयोगों से सुपरिचित होना चाहिए। जिन भाषाओं में व्याकरणिक लिंग हैं, उनका अनुवाद करते समय विशेष सावधानी आवश्यक है अन्यथा बहुत बड़ी गलती हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी भी भाषाएं हैं जिनमें लिंग हैं ही नहीं—जैसे तुर्की, फारसी आदि। ऐसी भाषाओं का अनुवाद उन भाषाओं में करते समय, जो लिंग प्रधान हैं, बड़ी ही सतर्कता से काम लेना चाहिए। लिंग सम्बन्धी नियम विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग ही होते हैं। अंग्रेजी में निर्जीव वस्तुओं के लिए Neutre gender है। किन्तु हिन्दी में निर्जीव वस्तुएं स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अन्तर्गत ही आती हैं—‘फूल रखे हैं’, ‘किताबें रखी हैं’ में फूल पुल्लिंग है, किताब स्त्रीलिंग। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय इसका पूरा ध्यान रखना होगा।

इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी में पुल्लिंग हैं तथा अंग्रेजी में स्त्रीलिंग, जैसे—Spring, ship, moon अंग्रेजी में स्त्रीलिंग हैं किन्तु हिन्दी में पुल्लिंग। अंग्रेजी के कवि कीट्स की पंक्ति है—‘Happily the Queen Moon is on her throne.’ इसका शब्दानुवाद होगा : ‘सम्भवतया महारानी शशि अपने सिंहासन पर विराजमान हैं।’ किन्तु हिन्दी के लिंग के अनुसार लिखा जाना चाहिए : ‘सम्भवतया’ महाराज शशि अपने सिंहासन पर विराजमान हैं।’ लेकिन यह भी शाब्दिक अनुवाद होकर रह जाएगा क्योंकि हिन्दी का मुहावरा तो भिन्न है वहां तो ‘पूर्णिमा का चांद’ अथवा ‘पूर्ण चंद’ प्रयोग ही प्रचलित हैं। इसी प्रकार हिन्दी का वाक्य है—‘जहाज तथा उसकी सभी नावें तूफान में नष्ट हो गईं।’ अंग्रेजी में इसका अनुवाद ‘The ship and all his boats were destroyed in the storm’ सही नहीं होगा बल्कि ‘The ship and all her boats were destroyed in the storm’ सही होगा

हिन्दी में लिंग बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि ये क्रिया, आकारांत विशेषण और सन्बन्ध कारक के परसर्ग को प्रभावित करते हैं—

लड़का आया है—The boy has come.

लड़की आई है—The girl has come.

यहां अंग्रेजी के वाक्यों में कर्त्ता के लिंग के अनुसार क्रिया प्रभावित नहीं हुई किन्तु हिन्दी के वाक्यों में क्रिया कर्त्ता के लिंग से प्रभावित हुई। अंग्रेजी के वाक्यों में—

He is a good boy.

She is a good girl.

लड़का और लड़की दोनों के लिए good शब्द का इस्तेमाल किया गया है किन्तु हिन्दी में ‘अच्छा लड़का’ और ‘अच्छी लड़की’ होगा। इसी प्रकार Ram’s

mother, Ram's father के लिए हिन्दी में 'राम की माता' तथा 'राम के पिता' होगा।

हिन्दी में प्राणिवाचक लिंग सरलता से मालूम हो जाते हैं क्योंकि उनके जोड़े होते हैं। किन्तु छोटे आकार के प्राणियों में जैसे जोंक, जूँ, मक्खी आदि में लिंग निर्णय की कठिनाई होती है। बंगला, उड़िया, असमिया में प्रमुखतया विशेषण तथा क्रिया में लिंग-परिवर्तन नहीं होता। इन भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करते समय लिंग सम्बन्धी कठिनाई सामने आती है।

प्राकृतिक और व्याकरणिक लिंगों की जानकारी से अनुवादक लक्ष्य-भाषा के वाक्य-विन्यास को इस अर्थ में समृद्ध बनाता है कि वह जटिल वाक्य-विन्यास-प्रक्रिया को सरल वाक्य-विन्यास-प्रक्रिया की ओर मोड़ दे सकता है। व्याकरणिक लिंगों के शब्दों जैसे—ग्रन्थ, पुस्तक आदि में अर्थ की दृष्टि से अन्तर नहीं होता किन्तु फिर भी लिंग की दृष्टि से इनमें अन्तर है। 'ग्रन्थ' पुल्लिङ्ग है तथा 'पुस्तक' स्त्रीलिङ्ग।

विभिन्न भाषाओं में लिंगों की व्यवस्था अलग-अलग है। हिन्दी में दो लिंग हैं, संस्कृत, ग्रीक, जर्मन और रूसी में तीन। वस्तुतः लिंगभेद की इतनी ही उपयोगिता है कि वह भाषा को व्याकरणिक अन्विति देता है।

(11) वचन—वचन सम्बन्धी नियम प्रत्येक भाषा के निजी होते हैं। हिन्दी, अंग्रेजी आदि में दो वचन हैं किन्तु संस्कृत में तीन वचन होते हैं, वहाँ दो के लिए द्विवचन रखा गया है। हिन्दी में बहुवचन की धारणा व्यक्ति एवं समूह के आधार पर है। अंग्रेजी में वचन सम्बन्धी नियम विशिष्ट होते हैं जैसे कुछ वस्तुओं में एक-वचन और बहुवचन रूप समान होते हैं—Swine, sheep, deer, hair। संख्यात्मक विशेषणों के बाद प्रयोग करते समय pairs, dozen, slone, hundred, thous and आदि के भी बहुवचन नहीं बनाए जाते जैसे—'I bought two dozen pencils' कुछ संज्ञाएं ऐसी होती हैं जिन्हें बहुवचन के रूप में ही प्रयुक्त किया जाता है जैसे—socks, cissors, trousers, spectacles, antials आदि। इसी प्रकार कुछ संज्ञाएं एकवचन होने पर भी बहुवचन के रूप में प्रयुक्त होती हैं जैसे—cattle poultry आदि। हिन्दी में भी कुछ शब्द ऐसे हैं जो बहुवचन होने पर भी एकवचन के रूप में प्रयुक्त होते हैं जैसे 'वह सात वर्ष का है।' हिन्दी में आदरसूचक वाक्यों में एकवचन के स्थान पर भी बहुवचन का प्रयोग किया जाता है जैसे—'मेरे पिताजी आए हैं' पिताजी एक वचन पर भी 'आए हैं' बहुवचन का प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी में ऐसा कोई नियम नहीं है। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय अनुवादक बहुधा ध्यान नहीं रख पाता और जब वह 'Shakespeare was a great poet' के लिए 'शेक्सपियर महान कवि था' लिख देता है तो हिन्दी भाषा की दृष्टि से यह अशिष्ट-सा लगता है क्योंकि हिन्दी के अनुसार लिखा जाना

चाहिए 'शेक्सपियर एक महान कवि थे।'

एकवचन 'मैं'। (I) के लिए भी कुछ हिन्दी भाषी क्षेत्रों में 'हम' का प्रयोग होता है और 'हम जाएंगे' का अर्थ वस्तुतः 'मैं जाऊंगा' ही होता है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को प्रसंग का ध्यान रखना चाहिए, तभी वचन की दृष्टि से अर्थ का सही निर्धारण हो सकेगा।

(12) पुरुष—पुरुष की कल्पना वक्ता, श्रोता और उनसे भिन्न तीसरे व्यक्ति के आधार पर हुई है। अनुवाद करते समय लक्ष्य-भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार पुरुष रखा जाना आवश्यक होता है, जैसे हिन्दी का वाक्य है—'राम ने कहा कि मुझे भूख नहीं है' अंग्रेजी में यदि ज्यों का त्यों अंतरित कर दिया जाए : 'Ram said that I am not hungry.' तो यह गलत होगा। अंग्रेजी भाषा में इसे कहा जाएगा : 'Ram said that he was not hungry.'

(13) पदक्रम—सभी भाषाओं का पदक्रम अलग-अलग होता है। हिन्दी, अंग्रेजी आदि में पदक्रम की निश्चित-व्यवस्था है किन्तु संस्कृत, रूसी आदि का पदक्रम स्वतंत्र है। पदक्रम में सभी पदों का ध्यान रखा जाता है किन्तु प्रधानता कर्म और क्रिया की ही होती है, जैसे हिन्दी का पदक्रम है—कर्त्ता + कर्म + क्रिया—'वह पत्र लिखता है', 'सीता पानी पीती है।' इन दोनों वाक्यों में क्रमशः कर्त्ता कर्म और क्रिया का प्रयोग है। इसके प्रतिकूल अंग्रेजी में कर्त्ता के बाद क्रिया आती है और फिर कर्म अर्थात् कर्त्ता + क्रिया + कर्म, जैसे—'He Writes the letter. Sita drinks water.'

अनुवाद करते समय पदक्रम पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। He the letter writes हो जाने पर पूरा वाक्य निरर्थक हो जाएगा। संस्कृत में क्रम का कोई कठोर बंधन नहीं है। 'वह पुस्तक पढ़ता है' का अनुवाद वहां—

'सः पुस्तकं पठति'

'पुस्तकं सः पठति'

'पठति सः पुस्तकं'

'पठति पुस्तकं सः'

—इन सभी ढंगों से हो सकता है।

इसी प्रकार हिन्दी में कहते हैं : 'हम, तुम और वह जाएंगे।' अंग्रेजी के पदक्रम में इसे कहेंगे : You, he and I shall go.' पदक्रम बदल जाने से कभी-कभी अर्थ बदल जाता है। 'He is reading the book' को 'Is he reading the book' के क्रम में रख देने से प्रश्नवाचक वाक्य बन गया। हिन्दी में वाक्य है—

'तुम नहीं चलोगे'

'तुम चलोगे नहीं'

यहां पदक्रम में यह परिवर्तन बल देने की इच्छा से किया गया है। इसी

प्रकार—

‘मैंने दूध पिया’

‘दूध मैंने पिया’

इसी प्रकार अंग्रेजी में—

‘She is beautiful, no doubt’.

‘Beautiful she is, no doubt’.

कविता में छन्द के पदक्रम को बदल देने से नया अर्थ पैदा होता है—

‘देखे मैंने वे शैल शृंग’ को यदि लिखें ‘मैंने वे शैल शृंग देखे हैं’ तो स्पष्ट हो जाएगा कि पहली पंक्ति में जो विशेष अर्थ लक्ष्य किया गया है वह दूसरी पंक्ति में समाप्त हो गया।

(14) कारक चिह्न—अन्य व्याकरणिक कोटियों के समान कारक सम्बन्धी धारणा भी सभी भाषाओं में एकरूप नहीं है। अंग्रेजी में दो कारक हैं, लैटिन और जर्मन में पांच, संस्कृत में सात और हिन्दी में सात। अनुवाद करते समय कभी-कभी कारक चिह्नों में भी परिवर्तन किया जाता है, जैसे—

मैं तुम से दोपहर को मिलूंगी।’

I shall meet you at noon.

इसी प्रकार—

write in red ink.

लाल स्याही से लिखो।

(15) कर्त्ता तथा कर्म की व्यापकता—संस्कृत के कर्त्ता और कर्म जितने प्रबल कारक हैं उतने प्रबल कारक अन्य भाषाओं में शायद नहीं हैं। कुछ ऐसे प्रयोग हैं जिनमें प्रेरणाहीन धातु का कर्त्ता प्रेरणावान बनाने पर कर्म होकर द्वितीया विभक्ति ग्रहण करता है। शेष स्थलों में अनुक्त रहने से तृतीया विभक्ति होती है जैसे ‘वेद पठति’ या ‘वेद पाठयति’ हिन्दी में हो जाएगा ‘वेद पढ़ता है’, ‘वेद पढ़ाता है’। अंग्रेजी में जहां प्रेरणात्मक बनने पर धातु बदलती है वहां तो यही प्रक्रिया है किन्तु अधिकांशतया प्रेरणार्थकता को दो क्रिया शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है—‘Shyam makes the boy drink milk’ या ‘Makes him sleep’ हिन्दी में इसका अनुवाद होगा ‘श्याम लड़के को दूध पिलाता है,’ या ‘उसे सुलाता है।’ हिन्दी में यह कार्य जैसे ‘पिलाता’ ‘सुलाता’ एक शब्द में ही हो जाता है। अंग्रेजी में प्रेरणात्मक क्रिया होती ही नहीं। इसलिए अनुवादक संस्कृत जैसी भाषा अंग्रेजी में अनुवाद करते समय सर्वत्र ‘make,’ ‘give’ आदि लगाकर प्रेरणा का बोध करता है जैसे—He makes him speak, learn, know, win. अंग्रेजी ने प्रेरणा के लिए बहुत-सी स्वतंत्र क्रियाएं निर्मित की हैं जैसे गत्यर्थक ‘Send’, बुद्ध्यर्थक ‘Teach’, भोगतार्थक ‘feed’ और अकर्मक ‘seat’। पर इनमें ‘feed’

सदा एक ही कर्म रखता है जैसे—‘Ram feeds him with sweets’ परन्तु ‘teach’ दो कर्म लेता है—‘He Teaches Gita’ तथा ‘Ram teaches him Gita’ इसलिए कर्त्ता और कर्म का यह सूक्ष्म अंतर अनुवादक के सामने सूक्ष्म अर्थभेद की समस्या पैदा करता है।

(16) काल—अनुवाद करते समय ‘काल की अवधारणा’ पर ध्यान देना होगा; क्योंकि सभी भाषाओं में काल-योजना समान नहीं है। काल एक प्रकार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य होता है—संस्कृत तथा रूसी में क्रिया के कालभेद का आधार उसका ‘प्रकार’ है। हिन्दी तथा अंग्रेजी के अभ्यस्त व्यक्तियों को रूसी की ‘प्रकार धारणा’ कठिनाई में डाल देती है क्योंकि वहां भूत या भविष्य दोनों कालों के दो ही भेद हैं—पूर्ण और अपूर्ण। पर काल की अवधारणा भाषा के विकासक्रम के साथ बदलती रहती है जैसे—‘वह प्रत्येक सोमवार को वहां जाता है।’ इस कार्य का सम्बन्ध भूतकाल से भी है, भविष्यकाल से भी और वर्तमान काल से भी। वह प्रत्येक सोमवार को पहले भी जाता था, आज भी जाता है और जाता रहेगा। वस्तुतः ‘जाता है’ क्रिया यहां काल-निरपेक्ष रूप में प्रयुक्त है। हिन्दी के ‘चावल पकाता है’ और ‘चावल पका रहा है’ दोनों का अनुवाद संस्कृत में ‘ओदनं पचति’ ही होगा। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय ‘I stayed there’ का अनुवाद ‘मैं वहां रहता था’ तथा ‘मैं वहां रहा’ दोनों ही हो सकते हैं। इसी तरह ‘मैं अभी आया’ का अनुवाद ‘I am just coming’ होगा और ‘उसने कहा कि अच्छी तरह से हूं’ का अनुवाद होगा : He said that he was quite well.’ जाहिर है कि भूतकाल और वर्तमान काल यहां भाषा विशेष के प्रचलित प्रयोग के अनुसार प्रयुक्त है—

(17) वाच्य—स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में कथ्य को अंतरित करते समय वाक्यों के वाच्यगत अंतर को विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए। कर्मवाच्य के कुछ प्रयोग विलक्षण होते हैं और उन पर ध्यान देना आवश्यक है जैसे—‘I did not take notice of the fact. यहां वस्तुतः क्रिया है ‘take’ और उसका कर्म है ‘notice’। यहां इसका कर्मवाच्य यदि किया जाए ‘The fact was not taken notice of. तो यह वाक्य गलत हो जाएगा। सही कर्मवाच्य वाक्य होना चाहिए—‘The notice of the fact was not taken by me.’

इसी प्रकार Prepositional verb पर भी अनुवाद में ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसे एक वाक्य है—‘The boy was searched for.’ हिन्दी में अनुवाद होगा। ‘लड़का खोजा गया’, ‘लड़के को खोजा गया।’

अंग्रेजी में भाववाच्य नहीं होता। कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य प्रायः सभी भाषाओं में होते हैं और एक भाषा के वाच्य के अनुसार उसे दूसरी भाषा में प्रस्तुत किया जा सकता है, जैसे—

संस्कृत का 'रामेण रावणः हतः'

हिन्दी में होगा : 'राम द्वारा रावण मारा गया' या 'रावण राम द्वारा मारा गया ।'

अंग्रेजी में होगा 'Ravna was killed by Ram.'

किन्तु यह सदैव आवश्यक नहीं होता कि कर्मवाच्य को कर्मवाच्य के रूप में ही या कर्तृवाच्य को कर्तृवाच्य के रूप में ही अनूदित किया जाए, क्योंकि सभी भाषाओं में वाच्य-प्रयोग की आदत समान नहीं होती। हिन्दी में कर्मवाच्य की तुलना में कर्तृवाच्य का प्रयोग अधिक किया जाता है। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय यदि अंग्रेजी में 'को' कर्मवाच्य है और हिन्दी में कर्मवाच्य के रूप में प्रस्तुत होने पर वह उतना प्रभावपूर्ण नहीं बनता जितना कि कर्तृवाच्य के रूप में बन सकता है तो ऐसी स्थिति में वाच्य में अंतर कर दिया जाना चाहिए।

'He was laughed of by all his friends.' इसे हिन्दी में 'उसके सभी मित्रों द्वारा उस पर हंसा जाता था' के स्थान पर लिखा जाना चाहिए—'उसके सभी मित्र उस पर हंसते थे।' इसी प्रकार एक और वाक्य है—

'By whom was the work done?' इसका अनुवाद 'काम किसके द्वारा किया गया?' नहीं होगा बल्कि होगा : 'काम किसने किया?' 'The bird was killed by the cruel boy.' 'निर्दयी लड़के ने चिड़िया मार डाली'। 'Gandhi ji was respected by all his Countrymen.' गांधी जी के सभी देशवासी उनका सम्मान करते थे।

(18) जोड़ना और छोड़ना—जिस भाषा से अनुवाद किया जा रहा है उसके वाक्यों को सदैव शब्द-प्रति-शब्द लक्ष्य-भाषा में अंतरित नहीं किया जाता। कभी-कभी उसके कथ्य को लक्ष्य-भाषा में प्रस्तुत करते समय एकाधिक शब्द अपनी ओर से जोड़ना या छोड़ना पड़ता है, क्योंकि भाषा प्रयोग-विधि या भाषा की प्रवृत्ति सदैव बड़ी ही महत्त्वपूर्ण होती है। हमारी बात नीचे दिए गए कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगी—

जोड़ना —

He travels third class.

वह तीसरे दर्जे में यात्रा करता है।

Better late than never.

कभी न पहुंचने से देर पहुंचना अच्छा है।

He is my cousin.

वह मेरा चचेरा भाई है।

चलती गाड़ी से उतरने की कोशिश मत करो ।

Do not try to get down (the) running train.

छोड़ना—

He has bought ('a') house ('over') there.

उसने वहां मकान खरीद लिया है ।

वह मेरी चचेरी बहन है ।

She is my cousin.

('There') are twenty rooms in the inn.

सराय में बीस कमरे हैं ।

समग्रतः कहना चाहिए कि वाक्य-रचना का भाषा-प्रवृत्तिगत एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ सदैव ही बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है । उसका अर्थ इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में सार्थक बनता है । वाक्य में शब्दों से ज्यादा उनका अर्थ और अर्थ के भीतर से निकलने वाली ध्वनि तथा आशय महत्त्व रखते हैं । अतः अनुवाद-प्रक्रिया में सबसे ज्यादा जरूरी होता है सन्दर्भ । क्योंकि सन्दर्भ से कटकर शब्द निरर्थक ही होता है । वाक्य में शब्दों को विषय एवं प्रसंग के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिए ।

काव्यानुवाद

देश-विदेश में काव्यानुवाद के प्रश्न को लेकर बहसें होती रही हैं। संक्षेप में इन बहसों को तीन वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(क) एक बड़ा समूह यह मानता रहा है कि काव्य का अनुवाद हो ही नहीं सकता। काव्यानुवाद असम्भव कला है। उनका कहना है कि काव्यानुवाद उस सुन्दर औरत की भांति है जो सुन्दर है तो वफादार नहीं है और वफादार है तो सुन्दर नहीं है। इस रूपक-कथन का संकेतार्थ इतना ही है कि काव्यानुवाद में सफलता प्राप्त कर पाना असम्भव होता है। इस वर्ग के समर्थक सिडनी, दांते, हम्बोल्ट्स, वर्जीनिया वूल्फ, क्रोचे आदि रहे हैं। इन सभी ने इस इतालवी कहावत का समर्थन किया है कि 'अनुवादक बड़े गद्दार होते हैं' (Traduttori traditori)। क्रोचे ने बहुत ऊँचे स्वर में घोषित किया—'अनुवाद असम्भव होता है।' (Translation is an impossibility)

(ख) दूसरे वर्ग के विचारक यह मानते हैं कि कविता का अनुवाद असम्भव नहीं है—वह कठिन अवश्य होता है। काव्यानुवाद की कठिनता को देखते हुए उसे असम्भव घोषित कर देना मानवीय क्षमताओं के प्रति अविश्वास प्रगट करना है। इस वर्ग के विद्वानों ने 'असम्भव' शब्द को लेकर आश्चर्य प्रकट किया है कि असम्भव क्या होता है? प्रयत्न करने पर मानव के लिए असम्भव कुछ नहीं है। प्रतिभा, बहुज्ञता और अभ्यास से काव्यानुवाद की कठिनता को हल किया जा सकता है। उस वर्ग के समर्थकों में होरेस, क्विण्टीलियन, मिसनो ड्राइडन, पोप और काडवेल आदि को रखा जा सकता है। काव्य को तत्त्व-तत्त्व अलग कर देखने वाले काडवेल ने कविता के सात लक्षण बताते हुए कहा है कि—(1) कविता लयात्मक होती है। (2) कविता का अनुवाद कठिन होता है। ध्यान देने की बात है कि मार्क्सवादी विचारक काडवेल ने काव्यानुवाद की चर्चा करते हुए यह नहीं कहा कि कविता का अनुवाद कठिन होता है, इसलिए वह असम्भव होता है। उनके मत का सारांश यही है कि काव्यानुवाद में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि उपन्यास, कहानी आदि के अनुवाद की तुलना में

काव्यानुवाद कठिन काम है।

(ग) तीसरे वर्ग के विद्वानों का विचार है कि काव्यानुवाद करने का अधिकार सभी को नहीं होना चाहिए। काव्य की अच्छी समझ के बिना काव्यानुवाद नहीं किया जा सकता। अरसिक व्यक्ति कविता का कचूमर निकालकर रख देगा किन्तु सहृदय व्यक्ति या कवि-हृदय व्यक्ति कविता से अपने को तादात्म्यीकृत करते हुए उसका काफी सही या समीपवर्ती अनुवाद कर सकता है। इस वर्ग के समर्थकों में शिलर, टी०एस० इलियट, एफ०आर० लीविस आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग भी है जो यह मानता है कि कविता का मूल का-सा अनुवाद हो ही नहीं सकता। यह अन्तर सृजन की मनोभूमि और अनुवाद की मनोभूमि से उत्पन्न होता है। यही कारण है कि स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में 'जैसी की तैसी' पुनर्प्रस्तुति नहीं हो सकती। कविता का तो निकटवर्ती या सह-अनुवाद हो सकता है। किन्तु उस प्रकार के अनुवादक को अनुवाद के लिए भी काव्यानुभूति की बनावट के रेशे-रेशे को—उसकी आभ्यन्तरिकता में—रचना-प्रक्रिया के स्तर पर पकड़ने का प्रयास करना होगा एवं कवि की मानसिकता से अनुवादक की मानसिकता को काफी निकट लाना होगा। यदि अनुवादक कवि के काव्य के साथ साधारणीकृत नहीं होता, तो भी अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। इस प्रकार के अनर्थकारी अनुवादों की एक लम्बी परम्परा रही है। काव्य के घटिया और भद्दे अनुवादों ने ही यह कहलवाया है कि काव्यानुवाद असम्भव होता है।

अच्छा काव्यानुवाद न हो पाने का एक मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि मूल रचना तो सर्जक की ही रहती है, चाहे अनुवादक कुछ भी करे। बेचारा अनुवादक अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाने के उपरान्त भी रचना के लिए दूसरा व्यक्ति ही रहता है। इस दृष्टि से अनुवाद असल रचना की असल नकल का प्रयास भर है। अनुवादक इस असल की असल नकल कितनी कर सकता है, केवल यही बात उसके लिए रह जाती है और फिर कभी-कभी तो समाज उसे सृजनशील कलाकार की भांति आदर भी नहीं देता। ऐसी स्थिति में अनुवादक असन्तोष का शिकार हो जाता है एवं पुनर्सृजन से पूरा लगाव रखता हुआ उसे भी 'दूसरे की वस्तु मानने का भाव' रखता है। कभी-कभी ऐसी स्थिति भी होती है कि अनुवादक स्वेच्छया अनुवाद करता नहीं, उसे अनुवाद करना पड़ता है। यानी किसी संस्था की योजना के तहत अथवा आर्थिक जरूरत के कारण वह अनुवाद को व्यवसाय के तौर पर ग्रहण करता है। ऐसे में चूंकि उसे अनुवाद करना पड़ता है—ऐसी मनःस्थिति में सृजनवत् अनुवाद की अपेक्षा उससे करना बहुत औचित्यपूर्ण नहीं है।

हजारों वर्षों से काव्यानुवाद किए जाते रहे हैं। किन्तु अनुवादक मूल सृजन तक न पहुंचकर अनुकर्त्ता (Imitator) या अधिक से अधिक व्याख्याकार (Interpreter) या बहुत ही सफल अनुवाद हुआ तो पुनर्सृजक (Re-creator) की

स्थिति तक पहुंच सका है। उसका प्रमुख कारण तो यही है कि सैकड़ों अनुवादों में दो-चार अनुवाद ही उच्चकोटि के अनुवाद होते हैं। शेष अनुवादों को देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि वे कितने दोषपूर्ण हैं और मूल रचना की मौलिक विशिष्टताओं को प्रस्तुत करने में कितने असमर्थ हैं। इसका कारण यह है कि कविता का अनुवाद अनुवादक से दोहरी अपेक्षा करता है एक तो मूल रचना और रचनाकार के प्रति तादात्म्य और निष्ठा की दूसरी ओर पाठक के प्रति दायित्व और निष्ठा की सृजनात्मक साहित्य का सफल अनुवाद अत्यन्त परिश्रम-साध्य होता है। पर कविता के अनुवाद में शब्द, बिम्ब, प्रतीक, वाक्य-योजना, लय, लहजा, बलाघात, भाव-भंगिमा, पंक्ति-पंक्ति की अन्तर्योजना, अन्तर्गठन, अलंकार, छन्द या सम्पूर्ण काव्य-संरचना को लेकर कुछ अतिरिक्त मूलभूत कठिनाइयां हैं, क्योंकि हर कविता का स्वभाव ही उसमें लयमान होता है तथा अपने कथ्य के अनुकूल स्वतः कविता लय और रूप में आकार ग्रहण करती है। कर्ण के कवच-कुण्डल की भांति ये कविता में उसके साथ ही उत्पन्न होते हैं। इसी में काव्यानुभूति की अद्वितीयता का मर्म छिपा रहता है। लोक-हृदय की सच्ची पहचान कराने के कारण कविता अनुभूति-योग है, जिसे आचार्य शुक्ल 'भावयोग' का नाम देते हैं और ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का समकक्ष मानते हैं।

काव्य-सृजन-प्रक्रिया को दैवी प्रेरणा मानने का कारण भी यही था कि उसमें लोकोत्तर और सृजन की उदात्त मनोभूमि के विधान होते हैं। इसी अर्थ में काव्य सहजानुभूति है जिसकी आत्माभिव्यक्ति कवि विशिष्ट क्षणों में करता है किन्तु काव्य-सृजन की आन्तरिक प्रक्रिया से न तो अनुवादक जुड़ सकता है, न उसमें से गुजर सकता है। वह उससे तादात्म्य अवश्य स्थापित कर सकता है। इसलिए जब तक अनुवाद व्यवसाय से जुड़ी कला रहता है, अनुवादक की किसी आन्तरिक जरूरत का परिणाम नहीं होता, तब तक वह मूल काव्य-पाठ के साथ न्याय नहीं कर पाता।

एक ही रचना के दो-तीन अनुवाद, अनुवाद और अनुवादक की मानसिक प्रक्रिया को समझने में सहायक होते हैं क्योंकि एक रचना के विभिन्न अनुवाद एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। ऐसा भी होता है कि एक ही रचना के अनेक अनुवाद अनुवाद-प्रक्रिया के दौरान मूल रचना से बहुत दूर निकल जाते हैं। मूल रचना के साथ-साथ अनुवादक की मानसिक प्रक्रिया, रचनात्मक प्रतिभा, परिवेश, उसकी काव्यार्थ-बोध-शक्ति सभी कुछ काम कर रहे होते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं की अभिव्यक्ति-शैलियों, प्रविधियों, पद्धतियों, ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों, मुहावरों-अलंकारों, मिथकों और अर्थ-लयों को स्रोत-भाषा की प्रकृति के साथ लक्ष्य-भाषा की प्रकृति में अन्तर होने के कारण ढालना कठिन हो जाता है। इस लक्ष्य की पुष्टि में Fitzgerald के 'Rubaiyat of Omar Khaiyyam' से अच्छा उदाहरण और

क्या हो सकता है जिसके सभी अनुवादों पर अनुवादकों का व्यक्तित्व 'हावी' हो गया है। यह बात हिन्दी में केशवप्रसाद पाठक (रूबाइयात उमर खैयाम), मैथिलीशरण गुप्त (रूबाइयात उमर खैयाम), हरिवंशराय 'बच्चन' (खैयाम की मधुशाला), सुमित्रानन्दन पन्त (मधुज्वाल), रघुवंशलाल गुप्त (उमर खैयाम की रूबाइयां) आदि के अनुवादों को देखने से स्पष्ट हो जाती है। इन सभी अनुवादों में अनुवादक का व्यक्तित्व विशिष्टता लिये हुए मौजूद है। यहां दो प्रकार का विरोधाभास भी देखने को मिलता है—मैथिलीशरण गुप्त का अनुवाद मूल को ही चौपट कर देता है वहीं बच्चन जी का अनुवाद तो मूल से भी ज्यादा प्रभावशाली बन पड़ा है। बच्चन जी अपने अनुवाद में पुनर्सर्जक हैं और गुप्तजी अनुकरणकर्ता मात्र। इस अनुवाद में बच्चनजी की कवि-प्रतिभा का प्रदर्शन हुआ है। अनुवाद के दौरान कुछ जोड़ते हुए या कुछ छोड़ते हुए अपनी सृजनात्मक सम्भावनाओं को उजागर किया है।

प्रायः यह देखने को मिलता है कि जब कभी भाषा कल्पनात्मक सत्यों के लिए प्रयुक्त की जाती है—चाहे वह पद्य हो या गद्य—तब कृति निश्चित रूप से अनुवाद हो जाती है। कारण, शब्दों में अनुस्यूत अर्थवत्ता को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। उनमें निहित अर्थ अत्यन्त सूक्ष्म होता है और उनमें एक अतिरिक्त अर्थ छिपा रहता है—यह छिपा रहने वाला अर्थ, स्वर-संगति, बलाघात, नाटकीय गति, ध्वनि-व्यवस्था आदि के माध्यम से निष्पन्न होता है। शब्द-विशेष से उत्पन्न लहजा (टोन) भी मूल भाषा-भाषी को सहज सम्प्रेषणीय होते हैं। अन्य भाषा-भाषी उसके शब्दार्थ को तो पकड़ता है, उसके लहजे से उत्पन्न सूक्ष्म अर्थ को इतनी आसानी से नहीं पकड़ पाता। इस प्रकार अनूदित काव्यकृति किसी तैल-चित्र की सफेद-काली छाया मात्र रह जाती है क्योंकि अनुवाद करते समय काव्यानुभूति की बुनावट और बनावट के साथ ही काव्य-भाषा की बनावट और बुनावट बदल जाती है। संरचनात्मक ढांचे के बदलाव के साथ उसकी मूल से सामंजस्य (Harmony) की बारीकी बहुत कम हो जाती है। जब सृजनात्मक कल्पना पूरी तरह सृजनात्मकता के क्षणों में सक्रिय होती है, तब वह 'कथ्य' और 'कथ्यरूप' का गठन इतने प्रखर और व्यापक स्तर पर करती है कि कोई भी अनुवाद उसके समतुल्य हो ही नहीं सकता या हो ही नहीं पाता।

कृति के कथ्य में जीवनानुभवों से सृजित अनेक बिम्ब रचनात्मकता में रिले-मिले होते हैं जिन्हें अनुवाद के समय रक्षित रख पाना कठिन हो जाता है। अनुवादक अपनी मातृभाषा के दबाव से निर्व्यक्तित्व होने पर भी बच नहीं पाता। प्रत्येक अनुवादक चाहे मूल के साथ उसकी संवेदना कितनी ही पूर्ण एवं श्रेष्ठ क्यों न हो, जाने-अनजाने में और सूक्ष्म रूप में मूल से हट जाता है। यही वह बिंदु है जहां सृजन और अनुवाद का पार्थक्य दूर से पता चलता है।

अनुवादक को अपनी मातृभाषा की जितनी गहरी और सूक्ष्म पकड़ होगी, उतनी गहराई से वह किसी भी अन्य भाषा के लेखक की अभिव्यक्ति के लालित्य को सराहने तथा अनूदित करने में सक्षम हो सकेगा। अर्थात् अनुवादक में रचना के भीतर गहरे पैठने की समझ होनी चाहिए, जो अपनी मातृभाषा के क्लासिक्स में धंसने से बनती है और जो अनुवाद के लिए निहायत जरूरी होती है। जो अनुवादक अपनी ही मातृभाषा की (या उस भाषा की जो उसके अध्ययन की प्रथम भाषा रही है) अर्थ-शक्तियों, अर्थच्छायाओं, शब्द-शक्तियों से उत्पन्न व्यंजनाओं से गहन परिचय नहीं रखता है, वह अन्य भाषाओं की गहन अर्थ-व्यंजनाओं को समझ के स्तर पर कैसे ग्रहण कर सकता है।

वर्णनात्मक साहित्य चाहे वह पद्य हो या गद्य उसका तो अच्छा अनुवाद किया जा सकता है, क्योंकि उसके मूल संरचनात्मक ढांचे का अनुवाद में ह्रास बहुत कम होता है। इसलिए उसके अनिवार्य अर्थ का अनुवाद में पतन नहीं हो पाता। उसको रोचक शैली में प्रस्तुत करना भी अपेक्षाकृत सहज होता है। यद्यपि मूल को पूर्णतया संप्रेषित करने की सीमा वहां भी रहती है। उदाहरणार्थ 'वार एण्ड पीस', 'अन्नाकैरना' आदि के अनुवाद विश्व-भर में बहुत ज्यादा लोग पढ़ते हैं और वे पसन्द भी किए जाते हैं। फिर भी रूसी भाषाविद् यह महसूस करते हैं कि अनुवाद में एक सीमा तक रूसी संस्कृति का एक विशेष भाग छूट गया है या अनुवादक उससे अलग हट गया है या कथ्य की सांकेतिकता खो गई है, पात्रों का स्वर पतला पड़ गया है या स्वर की मूलभूत विशिष्टताएं लुप्तप्राय हो गई हैं और लेखक की शब्दावली के बलाघात, प्रसंग-संकेत की विशिष्टताओं में व्याप्त ढंग में सन्निविष्ट समस्त विभेद उभरकर नहीं आ सके हैं।

काव्यानुवाद करते समय अनुवादक को स्रोत-भाषा के छन्द में परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता होती है। अनुवादक को कई बार लगता है कि छन्द बदल देने से कविता का रूपात्मक ढांचा बदल जायेगा। किन्तु ऐसा सोचते समय वह यह नहीं समझता कि छन्द से चिपके रहने पर और भी गम्भीर गलती हो जाने की संभावना रहती है। प्रत्येक कविता में कवि का अनुभव, विचार और अनुभूति विशेष ढंग से अनुस्यूत होता है, जिसमें एक के बाद दूसरा भाव-चित्र गुंथा होता है, जिससे एक अनिवार्य लय उत्पन्न होती है और वह लय एक विशिष्ट छन्द में अभिव्यक्त होती है। किन्तु किसी दूसरी भाषा में वही छन्द-बन्ध प्रयुक्त होने पर हो सकता है कि वह लय कुंठित हो जाए। अतः अनुवादक को सर्वप्रथम कविता में निहित लय और उसके आभ्यन्तरिक अवधारकों को खोजना चाहिए और अनुवाद करते समय इनसे अलग नहीं हटना चाहिए। छन्द का अर्थ है—छिपाकर रखी हुई वस्तु। अर्थात् छन्द कवि का निजी राज होता है। इसीलिए अनुवाद करते समय सबसे अधिक कठिनाई छन्द की होती है 'क्योंकि हर कविता के कान अलग होते हैं।' उदाहरण

के लिए जर्मन, अंग्रेजी, रूसी, चेक में बलाघात-युक्त अक्षर-विभाजन छन्द की रचना का निर्धारक है, जबकि पोलिश, स्पैनिश, फ्रेंच आदि भाषाओं में अक्षर बलाघात निरपेक्ष होकर निर्धारक बनता है। संस्कृत में अक्षरों का परिमापन अधिक ताकतवर है। लेकिन हिन्दी में वर्णिक छन्द बहुत अधिक सफल नहीं हो पाए हैं। वर्णिक छन्दों में तीन-तीन अक्षरों का पुंज गति रूप में लय उत्पन्न करता है, जबकि मात्रिक छन्द में दो यतियों के बीच में मात्राओं का योग लय का निर्धारक बनता है।

छन्द में नियमित से कम महत्त्व अनियमित या अप्रत्याशित का नहीं है, यदि इनका प्रयोग किसी उद्देश्य विशेष के लिए किए जाता है। यह बात हिन्दी की आधुनिक कविता की ओर ज्यादा ध्यान दिलाती है, जहां कविता की पूरी पंक्ति और लय में निश्चित सम्बन्ध नहीं है। प्रायः पूरी कविता के छन्द-विधान को अलग-अलग लय-संरचनाओं के उद्देश्यपरक क्रम-विन्यास के रूप में देखने पर अनियमित पंक्तियों का काव्यार्थ पकड़ में आता है। जैसे कवि अज्ञेय की प्रख्यात कविता 'भोर-वेला' देखिए—

'हाक् ! हाक् ! हाक् !

मत संजो यह स्निग्ध सपनों का अलस सोना—

रहेगी बस एक मुट्ठी खाक !

थाक् ! थाक् ! थाक् !'

यहां काव्य भाषा में प्रयुक्त विरामों का विशेष महत्त्व है—इनसे लय-अनुशासन तथा शैलीगत स्पष्टता का प्रकाय हुआ है। किसी सीमा तक इन्होंने संगीत तत्त्व और सम्प्रेषणीयता की भी रक्षा की है। इस प्रकार कविता में ये विराम अलंकरण न होकर अंग रूप हैं। इस छन्द में प्रयुक्त शब्द मनमाने आसन पर बैठे अवश्य हैं पर वे अभिप्राय विशेष में प्रसंग-निर्देश तथा सामंजस्य को लिये हुए हैं।

छन्द शब्दाभिव्यक्ति के चरण होते हैं। ऐसा कहने का प्रमुख कारण छन्द में निहित लय का आधार है जो गद्य में नहीं पद्य में होती है और कुछ दूर तक उसका साथ देती है। इस दृष्टि से गद्य भी लय विहीन नहीं होता है। अर्थात् सम्पूर्ण भाषिक अभिव्यक्ति में लय विद्यमान रहती है। कविता में छन्द श्रौत रूप में लय बिम्ब है। प्रत्येक भाषा की अपनी अलग शब्द-योजना होती है तो प्रत्येक भाषा का लय-प्रवाह भी अलग होता है। यही कारण है कि छन्द और लय का अनुवाद के समय लक्ष्य-भाषा में प्रायः अंतरण नहीं हो पाता है। एक सीमा तक छन्द की लय उस भाषा से बंधी होती है, जिसमें उसका जन्म होता है। यह जन्म-स्थान बदलते ही ध्वनि अर्थ-लय आदि में भारी अन्तर पड़ जाता है। इसीलिए अज्ञेयजी ने छन्द को कविता की आंख कहा है, 'भाषा सुनकर काम चला लेती है, पर काव्य-भाषा

अपने को देखती है, देख भी लेती है। बिम्बात्मक होने के कारण काव्य-भाषा अपने को देखती है।

कविता शब्द-विधान है। काव्य में भाषा का सर्वाधिक सक्रिय उपयोग होता है। भाषा का प्रत्येक अवयव-वर्ण, शब्द, शब्द-विन्यास, वाक्य-विधान, अर्थ-विधान मुहावरा, विराम चिह्न आदि सभी का पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न कवि करता है। सामान्य भाषा में वर्ण का महत्त्व चाहे नगण्य हो, पर कविता में बहुत होता है। स्वयं आनन्दवर्धन ध्वनि की व्यापकता वर्ण से प्रबन्ध तक मानते रहे हैं। आचार्य कुन्तक ने वर्ण से ही वक्रता की चर्चा को आगे बढ़ाया है। 'कवितावली' में 'तुलसी मनोरञ्जन रञ्जित अञ्जन नयन सुखञ्जन जातक से' इस पंक्ति में 'अ' (च वर्ग के अन्तिम वर्ण) से संयुक्त ज का स्पर्श होने से नाद-सौन्दर्य में चमत्कार उत्पन्न हुआ है। वर्ण-विन्यास वक्रता का यह समस्त सौन्दर्य दूसरी भाषा में अनूदित करते ही समाप्त हो जाता है। शब्द-क्रम के बदलते ही पूरा स्वर-विधान टूट जाता है। वर्ण कविता के संगीत-तत्त्व का प्रधान गुण है। 'कविता क्या है' निबन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का ध्यान काव्य की वर्ण-विन्यास-वक्रता पर गया है। कविता के इस वर्ण-विन्यास का अनुवाद हो ही नहीं सकता, इस अर्थ में काव्यानुवाद असम्भव होता है। वर्णों में व्यंजनों से स्वरों का महत्त्व अधिक है—काव्य-संगीत का प्राण तत्त्व स्वर है। अच्छी हिन्दी या अंग्रेजी लिखना स्वर-पहचान के बोध का प्रमाण है। लघु स्वर गति को काव्य में तीव्र करते हैं और दीर्घ स्वर मन्द। ऐसी स्थिति में स्रोत-भाषा का स्वर-विधान लक्ष्य-भाषा में ला पाना कठिन हो जाता है। यहां काव्यानुवाद की कसौटी इस बात में निहित होती है कि अनुवादक ने लक्ष्य भाषा के नाद-सौन्दर्य और वर्ण-विन्यास वक्रता को किस हद तक परखा है और कहां तक उसका उपयोग अनुवाद में कर सका है।

काव्य-भाषा का संवाहक है—शब्द। सामान्य भाषा के शब्दों में कवि नया अर्थ भरता है। या निरन्तर प्रयोग से भाषा के जो शब्द घिस जाते हैं उन्हें छोड़ते हुए नये शब्दों को लोक-भाषा में से लाता है। इस अर्थ में काव्य-भाषा की अर्थवृत्ता नाद-गुण से लेकर प्रतीक-विधान तक फैली होती है। कविता में शब्दों का घनत्व इतना बढ़ जाता है कि वे चिह्न न रहकर 'वस्तु के रूप' में दृष्टिगत होने लगते हैं। इसीलिए कविता को 'उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम-विधान' कहा गया है। परन्तु लक्ष्य-भाषा में लाते समय पूरी सावधानी रखने के बाद भी अनुवादक को शब्द-विधान-क्रम बदलना पड़ जाता है और तब होता यह है कि कविता के प्राणों में दरार पड़ जाती है। जैसे कालिदास का 'रघुवंश' में यह कथन—'रघोः सकाशादनवाप्य कामम्।' यहा 'रघु' व्यक्ति न होकर दानवीर के प्रतीक रूप में शब्द से व्यंजित है। अनुवादक सोच सकता है कि व्यक्ति-विशेष के अर्थ में निश्चित भाव होने के कारण व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्द किसी प्रकार के विशेष भाव के अर्थ

में प्रयुक्त नहीं हो सकता। पर अनुवादक को कुन्तक का यह कथन ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तिवाचक शब्द अपने में चमत्कार रखने के साथ सामान्यवाचक शब्दों का भी गुण रखते हैं और कवि उनका भी द्विविध उपयोग कर लेता है। इनमें संस्कृति का भाव-चित्र जुड़ा होता है।

काव्य में भाषा की विशेषण-वक्रता का गुण भरपूर समाया होता है। परन्तु यह काव्य-गुण अनुवादक को बहुत परेशान करता है। सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति की समर्थ गति वाले कवि ज्यादा-से-ज्यादा विशेषण-वक्रता के कवि होते हैं। एक प्रकार से उनकी पहचान ही विशेषणों से बनती है। इसका प्रधान कारण यह है कि संज्ञा की अर्थ-सीमा अनिश्चित होती है, उसे विशेषण ही निश्चित करता है। यह विशेषण ही अनुभूति, संवेग, कल्पना, भावना आदि को प्रकाश में लाते हैं। इन विशेषणों का लाक्षणिक अर्थ होता है। विशेषणों में क्रियावाचक विशेषण भाषा में विशेष चमत्कार की सृष्टि करते हैं। इनका प्रमुख कार्य विशेषणपरक की क्रिया को मूर्त करना होता है। तीन प्रकार के इन विशेषणों—रूढ़, मौलिक तथा विशेषण विपर्यय—में विशेषण-विपर्यय का विशेष महत्त्व होता है। समर्थ कवि ऐसा भी करता है कि वह विशेषणों से काम न चलाकर क्रियापदों से काम चला लेता है। स्वयं राजशेखर कविता की भाषा में क्रिया-पदों के महत्त्व को पुनः-पुनः घोषित करते रहे हैं। काव्यानुभव का सम्पूर्ण योग क्रियापदों में ही प्रतिफलित होता है। यही कारण है कि सम्पूर्ण अनुवाद को दृष्टि में रखने वाला अनुवादक क्रियापदों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किए रहता है। स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में काव्य को लाने के लिए बढ़िया अनुवादक उन रूपों के प्रति आसक्ति नहीं रखता, जिनकी ताजगी खत्म हो गई है। काव्य-शक्ति को उजागर करने के लिए अभिव्यक्ति की विस्मृत प्रणालियों को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास वह करता है।

काव्य-भाषा के पर्यायवाची शब्द अनुवादक की ज्ञान-राशि की कसौटी होते हैं। जो भाषा जितनी ही सशक्त होगी, उसमें पर्यायवाची शब्दों की उतनी ही अधिकता रहेगी। मजेदार बात इन शब्दों की यह है कि इनका वाच्यार्थ एक होता है किन्तु व्यंग्यार्थ सन्दर्भ के अनुसार अलग-अलग ढंग से व्यंजित होता है। इसका कारण है कि ये शब्द अपनी व्युत्पत्ति, स्वभाव, स्वरूप आदि में भिन्न-भिन्न अर्थ-सन्दर्भ रखते हैं। जैसे पंकज (पंक या कीचड़ से उत्पन्न) सरोज (सरोवर से उत्पन्न) आदि शब्द। पर कविता में इनका इतना महत्त्व होता है कि ये ही पर्याय वक्रता के मूलाधार हैं। मध्ययुगीन भारत का दृष्टिकूट काव्य इन काव्य-चमत्कारों की अद्भुत रंगशाला है। अनुवादक को इन पर्यायों के व्युत्पत्ति-सन्दर्भ, कथा-सन्दर्भ को ग्रहण करने की यथासम्भव कोशिश करनी चाहिए। जैसे कृष्ण के पर्याय मुरारी, हरि, गोपाल, मनमोहन, श्याम, यशोदानन्दन, द्वारिकानाथ, गिरिधर,

मुरली माधव, राधा-वल्लभ आदि शब्द हैं—मीरा की पंक्ति है—‘मेरा तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई’। तो इस पंक्ति में ‘गिरधर’ कृष्ण का पर्याय मात्र न होकर एक विशेष रक्षा-बोधोद्भात्मक ब्रह्म का प्रतीक है, कथा को छिपाए हुए मिथक है। इसलिए पर्यायों को पकड़ने के लिए अनुवादक को उस भाषा विशेष की सांस्कृतिक जड़ों की जानकारी अनिवार्य होती है। इस जानकारी के अभाव में ठीक अनुवाद हो ही नहीं सकता।

काव्यानुवाद में पारिभाषिक शब्दों के विषय में क्या नीति अपनानी चाहिए? यह प्रश्न तरह-तरह से उठाया तथा सोचा जाता रहा है। ज्ञान-विज्ञान का नाना-विध विस्तार हो जाने के कारण तमाम अनुशासनों के ‘पारिभाषिक शब्द’ कविता में धड़ल्ले से आ रहे हैं। एवं आने भी चाहिए। पहले से ही दर्शन, इतिहास, गणित ज्योतिष, वैद्यक आदि के अनेक शब्द हिन्दी कविता में वैज्ञानिक प्रयुक्त किए जा रहे हैं। जैसे ‘कामायनी’ की ये पंक्तियाँ—

कर रही लीलामय सानन्द,
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त॥

यहां ‘महाचिति’, ‘उन्मीलन’ आदि शैवाद्वैत दर्शन के घोर पारिभाषिक शब्द हैं। इन शब्दों के पर्याय चुनने में बड़ी सावधानी की जरूरत है। थोड़े से प्रमाद में इनका अर्थ बदलकर अनर्थ का रूप ले लेता है। इस प्रकार के शब्दों के मामले में भाषा के मर्मज्ञों से राय लेकर ही अनुवाद करना चाहिए। थोड़ी-सी भूल पदस्खलन का कारण बन जाती है।

भारतीय तथा भारतेतर विचारकों का यह मत रहा है कि कविता के शब्दों में उलट-फेर नहीं किया जा सकता। कवि के समक्ष ‘कोई’ शब्द लेने की बात नहीं होती, ‘एकमात्र’ शब्द के चुनाव का मतलब होता है। उसे ‘एकमात्र’ शब्द को बदल देने से कविता नहीं रह जाएगी, वह दूसरी कविता हो जाएगी। ऐसा भी हो सकता है कि कविता के शब्द बदलते ही काव्यात्मकता समाप्त हो जाए। जैसे बिहारी का यह दोहा—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा-नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, स्याम हरित-दुति होय॥

इस दोहे का पूरा काव्यात्मक चमत्कार ‘झाँई परै’, ‘स्याम हरित, दुति होय’ पर टिका है। इन शब्दों के स्थान पर अन्य शब्दों को नहीं रखा जा सकता। कवि को जो कहना अभीष्ट है, उसके लिए यहां एक ही शब्द, एक ही क्रिया और एक ही विशेषण उपयुक्त है। इसमें बिहारी के भाव या विचार को व्यक्त करने में इन शब्दों के अतिरिक्त किन्हीं शब्दों से काम ही नहीं चल सकता। विशिष्टता को

प्रकट करने में बिहारी ने एक भी फालतू शब्द का प्रयोग नहीं किया। अनेकार्थी अर्थ-व्यंजना वाले ऐसे शब्द अनुवादक का साथ कभी नहीं देते। उनका तो 'भावानुवाद' ही करना पड़ता है जिसमें 'बहुत कुछ छूट' जाता है और 'बहुत कुछ' अनुवादक को 'भरना' पड़ सकता है।

काव्यानुवाद में शब्दार्थ के प्रसंग-संकेत (Allusion) और साहचर्य (Association) का प्रश्न भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रचना में पौराणिक, ऐतिहासिक, व्यक्ति-घटना, प्रसंग का उल्लेख 'प्रसंग-संकेत' होता है—जैसे धर्म-वीर भारती के 'अन्धायुग' में प्रसंग-संकेत इस प्रकार आया है।

‘हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अश्वत्थामा है संजय है, अंधियारा है।’

इन पंक्तियों में 'अश्वत्थामा' और 'संजय' ये दोनों शब्द प्रसंग-संकेत रखते हैं। शब्दों के साथ जो भाव लिप्त है, या रहता है, वही साहचर्य कहलाता है। 'संजय' कहते ही भारतीय सांस्कारिक मन में एक विशेष प्रकार के दिव्य दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति का उदय हो जाता है। अंग्रेजी भाषा साहित्य में 'ब्लड' शब्द का आभिजात्य, काम-भावना आदि से अनजाने ही साहचर्य जुड़ता है। इस प्रकार 'प्रसंग-संकेत' तथा 'साहचर्य' का कविता में बड़ा ध्यान अनुवादक को रखना चाहिए, क्योंकि इनकी जड़ें सांस्कृतिक परम्परा में बहुत दूर तक फैली होती हैं। इनसे अपरिचित अनुवादक इनका ठीक बोध ही नहीं कर पायेगा। प्रसंग-संकेत की इस कठिनाई के कारण ही इलियट की कविता 'वेस्टलैण्ड' का कोई भी अच्छा काव्यानुवाद नहीं हो सका है। मूल कविता की व्याख्या ही सौ या डेढ़ सौ पृष्ठों तक की जाती रही है।

काव्यानुवाद का एक कठिन पहलू यह भी है कि मूल कविता को लक्ष्य-भाषा में लाते ही भाषा का नाद (साउंड), भाव (सेन्स), संगीत (म्यूजिक), अर्थ (मीनिंग) आदि का ग्रन्थ-बन्धन टूट जाता है क्योंकि काव्य में अर्थ शब्द के अधीन रहता है। इसी अर्थ में काव्य को 'शब्द-विधान' कहा भी जाता रहा है।

अनुवाद की समस्या यही है कि उसे मूल के अधिकाधिक निकट होना चाहिए। यहां अनुवाद का सम्बन्ध 'अनुकरण' से हो जाता है। भिन्न समय और देश का कवि 'मूल' को अनुवाद के लिए इसलिए अपनाता है कि उसके अपने समय तथा कृति के सृजन के समय की स्थितियों में कुछ समानता होती है और यह भी ध्यान रहता है कि अनुवाद के माध्यम से वह अपने समय को उपयुक्त कृति दे रहा है। पोप, होरेस की और जान्सन ज्यूवेनल के अनुवाद की ओर इसलिए आकृष्ट हुए हैं कि उन्हें लगा है कि जो कुछ होरेस और ज्यूवेनल ने कहा था, उसे एक बार फिर से कहने की आवश्यकता है। संसार-भर में प्राचीन क्लासिक्स का अनुवाद इसी दृष्टिकोण से होता आ रहा है। किन्तु अनुवाद को मूल का 'छायाभास' मात्र नहीं

होना चाहिए। अनुवादक को रचना के रूप की ओर समर्पित तो होना चाहिए किन्तु यह समर्पण बहुत नियन्त्रित ढंग का होना चाहिए। जिस कविता का अनुवाद उसे करना है, वह उसके लिए 'गवेषणा' की वस्तु हो, कवि की अनुभूति से उसका भाव-तादात्म्य हो। उसे रचना की बनावट उसके अन्तर्समिंजस्य तथा बाह्य संरचना पर पूरी तरह ध्यान देना चाहिए तथा उसकी मूल संवेदना और ज्ञानात्मक शक्ति को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए।

कविता रूप, रस, स्पर्श, गन्ध और ध्वनि के मूर्त्त-अमूर्त्त बिम्ब जगाती है एवं मूर्त्त वस्तुओं में एक तारतम्य होता है। इस तारतम्य में स्पर्श सबसे स्थूल और रस सबसे सूक्ष्म है। बिम्ब में ऐन्द्रियता की अनिवार्यता होती है और जिस कवि में ऐन्द्रिय-बोध जितना सूक्ष्म होता है, वह उतने ही उस स्तर के सादृश्य-विधान उपस्थित करने में समर्थ होता है। मानस तथा अतिमानस के सादृश्य-विधान प्रायः बड़े जोखिम भरे होते हैं, उनके उपयोग में थोड़ी-सी चूक होने पर कवि स्वयं अपने स्तर से गिरने लगता है तथा इस प्रकार की कविताओं के अनुवाद में कठिनाता रहती है। 'ओस की बूंद' की भांति कविता अनुवादक के हाथ का स्पर्श करते ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की कविताओं के अनुवाद जब कभी हुए हैं, पाठकों को निराश होना पड़ा है। अंग्रेजी कवि कीट्स के बहुत अच्छे अनुवाद इसीलिए नहीं हो सके हैं।

कविता में प्रयुक्त विशेषण और पर्याय गठनात्मक अन्तर्योजना के अखण्ड अंग होते हैं और सच्चा काव्यार्थ उन्हीं में सीधी धार-सा बहता है। इनमें कृत्रिम संरचना की जटिलता नहीं होती। अपनी ऋजुता और भीतरी वक्रता इनमें रहती है, जैसे निरालाजी की प्रख्यात कविता 'राम की शक्तिपूजा' को लिया जा सकता है जिसमें ऋजुता के साथ भीतरी वक्रता विद्यमान है जो इसके विशेषणों और पर्यायों में मौजूद है। इसके प्रतीकों और मिथकों को, विवरणों और इतिवृत्तों को अनुवाद में ठीक से पकड़ा जा सकता है किन्तु इस कविता के सर्वाधिक प्रभावकारी आघात विशेषणों के रूपों में न्यस्त हैं जिन्हें कोई विदेशी अनुवादक इनके अभिप्रायपरक सन्दर्भों को पकड़े बिना ग्रहण नहीं कर पाएगा। इसलिए इस कविता का अनुवाद भिन्न संस्कृति वाले व्यक्ति के लिए करना लोहे के चने चवाने के समान है। जैसे 'राम की शक्तिपूजा' में 'कमल' का बार-बार प्रयोग देखिए—

- (1) 'राजीवनयन द्रुतलक्ष्य'
- (2) 'नमित मुख सान्ध्य-कमल'
- (3) 'नत सरोज मुख श्याम देश'
- (4) 'इन्दीवर निन्दित लोचन'
- (5) 'कमल लोचन ध्यानलग्न'
- (6) 'पलक-कमल ज्योतिर्दल'

इस प्रकार पूरी कविता में 'कमल का अभिप्राय विशेष-विशेष सन्दर्भों में स्थित है। कभी एक सौ आठ कमलों से देवीपूजा का सन्दर्भ है जिसमें आख 'इन्दीवर' है और दूसरी ओर साधना को जागरूक रखने का स्वीकृत एवं समर्थ माध्यम है। लेकिन कविता में कवि इन शब्दों की आवृत्ति कर अर्थ को चक्राकार घुमाता है। इस तरह कवि शब्द-शब्द अर्थवृत्त बनाता चलता है। अतः अनुवादक को कविता के आवृत्तिमूलक पर्यायों तथा उनसे बने अर्थगुच्छों पर ध्यान देना होगा।

रूपकात्मक (Allegorical) तथा फन्तासीपरक (Fantasy) कविताओं के शब्दों के घुमाव और उनमें निहित-विहित तनावों के व्यास कभी-कभी बड़ी कठिनता से बनते हैं। जैसे दांतों के बीच सूराख होने से पकड़ी हुई चीज फिसल जाती है, वैसे ही इस प्रकार की कविताएं होती हैं, जिन्हें कितना भी कसकर पकड़ने की कोशिश करो, ये फिसल ही जाती हैं एवं इनके अर्थ की अनिश्चितता पाठक हो या अनुवादक, दोनों को द्वन्द्व-ग्रस्त रखती है क्योंकि ये कविताएं अर्थ की अस्पष्टता, अमूर्तता और कोहरिलता में बहती हैं। यह सत्य है कि इन कविताओं में एक बुनियादी यथार्थ होता है लेकिन ठोस अर्थ प्याज के छिलके की भांति कई परतें उतारने के बाद मिलता है। जब कॉलरिज की कविता 'Kubla Khan' या मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' का अनुवाद किया जाता है तो कहीं कुछ 'छूट जाता है' या 'कहीं कुछ जुड़ जाता है'। हर बार इनके अनुवाद में यही समस्या सामने आएगी। वास्तव में यह काव्यानुवाद की एक विवशता है कि इनका महीन ढांचा अनूदित नहीं हो सकता क्योंकि इनमें एक खास ढंग की तिलस्मी कला काम कर रही है, अनुवाद करते ही वह तिलस्म टूट जाता है।

काव्यानुवाद की प्रधान समस्या काव्य-भाषा के अनुवाद की समस्या है क्योंकि कविता भाषा में ही होती है। जैसे तारों में बिजली बहती है वैसे ही कविता भाषा में बहती है। इसलिए सम्पूर्ण काव्यानुवाद एक प्रकार का भाषानुभव है। भाषा के शब्दों में देश और काल तथा इतिहास-भूगोल-दर्शन सभी निहित रहते हैं। शब्द जीवावयव है जो अर्थ को भरता है और बहुत समय तक ढोता भी है। प्राचीन कविताओं का अनुवाद आज इसलिए कठिन पड़ता है कि उनकी भाषा बदलते ही देश और काल के साथ काव्यार्थ बदल जाता है। जब 'वाल्मीकि रामायण' और 'गीता' का अनुवाद किया जाता है, तो उनके भी शब्द-सन्दर्भ, प्रसंग-निर्देश खोजने पड़ते हैं—'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः'। अब यहां संस्कृत के 'युयुत्सव' का अनुवाद हिन्दी में 'युयुत्सव' ही रखना पड़ेगा। इस शब्द को हटाते ही समस्त सन्दर्भगत अर्थ का ढांचा 'युद्ध के लिए उत्सुक' लिखते ही डगमगा जाता है। कविता में शब्द और शब्द के बीच में जो जगह रह जाती है, वास्तव में कविता का अर्थ वहीं जीवित होता है, जिसकी पूर्ति का अनुवादक कितना ही प्रयास क्यों न करे, शब्दक्रम बदलते ही पद-वाक्य-योजना, स्वराघात, बलाघात, यति-गति

सभी बदल जाते हैं। यदि कविता का काल-बोध टूट जाता है तो प्रतीक आदि वर्ण-संकरता धारण कर लेते हैं क्योंकि पुराने प्रतीकों पर नये प्रतीकों-अनुभवों-संवेगों और सृजनात्मक संयोजनों की पर्त चढ़ जाती है। अनुवादक नयी संरचना, नयी भाषा सब कुछ नया पैदा करता है, इसी अर्थ में अनुवाद 'पुनर्सृजन' कहा जाता है।

कविता की भाषा-प्रयोग विधि साहित्य की अन्य विधाओं से अलग तरह की विधि है। इसदृष्टि से सामान्य भाषा की तुलना में काव्य-भाषा पृथक् और विशिष्ट है। सामान्य भाषा के मानदण्ड काव्यभाषा पर न तो लागू हो सकते हैं और न होने चाहिए। शब्दों द्वारा समर्थित अनुभव कवि का निजी अनुभव होता हुआ भी निर्व्यक्तित अनुभव होता है। सामान्य भाषा संकेत और संकेतित के बीच के स्थिर सम्बन्धों को न तो तोड़ती है न विचलित करती है। किन्तु काव्य-भाषा संकेत और संकेतित के बीच के स्थिर सम्बन्धों को लगातार तोड़ती है। ऐसा करने से एक नयी अर्थ-गर्भिता और सृजनात्मक रूप का नया प्रवर्तन होता है। काव्य का जो प्राणभूत व्यंग्यार्थ है, वह शब्द-व्यापार की ही कला में है। इसलिए वाच्येतर अर्थ की खोज कविता के विविध सन्दर्भों की खोज है। इसी से कलानुभव कलानुभूति के रूप में रूपान्तरित होता है और जो वास्तविक अनुभव है वह बिम्ब ग्रहण और अर्थ-ग्रहण के अन्तःसम्बन्ध संघटन का रूप ग्रहण करता है। इसलिए अच्छी कविता को हम जितनी बार पढ़ते हैं उतनी ही बार उसके नये-नये अर्थ-स्तर खुलते और सूझते हैं। तात्पर्य यह है कि कविता के शब्दों में अर्थों की अनन्त सम्भावनाएं निहित रहती हैं। कविता का अर्थ-सन्दर्भ-व्यापार सीमित न होने के कारण अनुवादक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि काव्य-भाषा में बाहरी सूचना से अधिक ध्यान सन्देश के गठन पर होता है।

कवि के संवेदनात्मक ज्ञान को उसकी ज्ञानात्मक संवेदना लगातार तनाव में रखती है। इसलिए ध्वनि और अर्थ के बीच, व्याकरण और शब्द-रचना के बीच, वाक्य और वाक्य-खण्ड के बीच, शब्द और उसके अवयव के बीच एक क्रमबद्धता में बंधा तनाव रहता है। इसे हम चाहे ध्वनि नाम दें, चाहे वक्रता, चाहे रीति या गुण नाम दें या रस कह दें, एक विशिष्ट प्रकार की सौन्दर्य-कला कविता की पूरी संरचना के सन्दर्भ में पंक्ति-पंक्ति से जुड़ी रहती है। कविता के सन्दर्भित काव्यार्थों को रक्षित रखने के लिए अनुवादक उसकी कलात्मक बनावट को पकड़ने का प्रयास करता है और ऐसा करने पर ही अनुवाद एक नया संस्करण या पुनर्रचना दृष्टिगत होने लगता है। उदाहरणार्थ एक जापानी कवि के निम्नांकित हाइकू का हिन्दी के दो प्रसिद्ध कवियों द्वारा किया गया अनुवाद देखिए—

The old pond

Plop.

A frog jumps in

(Zenin-English Literature and Oriental Classics, Page 207.)

जापानी के इस प्रसिद्ध हाइकू का अनुवाद शमशेर बहादुर सिंह ने (हिन्दी-काव्य पिछला दशक) में इस प्रकार किया—

एक पुराना तालाब

और उछलते मेंढक की आवाज

पानी के भीतर (बीच) ?

इस अनुवाद में शब्दों के बिम्बगत सन्दर्भ बिखर गए, क्योंकि स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में लाते समय 'कुछ छूट गया' और 'कुछ बढ़ा दिया गया'।

अज्ञेय ने इसी 'हाइकू' का अनुवाद इस प्रकार किया है—

'ताल पुराना'

कूदा दादुर

गुडुप् ।'

इस अनुवाद में शब्द-साम्य, अर्थ-साम्य और ध्वनि-साम्य—तीनों का ध्यान रखा गया है। यह सब सम्भव इसलिए भी हो पाया है कि अज्ञेय शब्द की पकड़ के कवि हैं।

कवि शेली की कुछ पंक्तियाँ हैं—

Many a green island needs must be

In the deep wide sea of misery

Or the mariner worn wan and

Never thus could voyage on.

अज्ञेयजी ने इन पंक्तियों का अनुवाद किया—

'कई हरे-भरे द्वीप अवश्य होंगे

व्यथा के गहरे और फैले सागर में

नहीं तो थका-हारा सामरिक

कभी ऐसे यात्रा करता न रह सकता ।

यह अनुवाद मूल के अत्यधिक निकट है, उसे मूल की धुंधली छाया नहीं कहा जा सकता। मूल कविता में निहित सूक्ष्म-गहन अर्थ-व्यंजना को कवि ने काफी ठीक पकड़ा है और अपनी भाषा के मुहावरे में उन अर्थस्तरों को व्यंजित किया है। ऐसे अनुवादों से ही आशा बंधती है कि कविता का सफलता से अनुवाद हो सकता है।

स्वयं अज्ञेयजी की अनेक कविताओं का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इनमें से एक अनुवाद (भाषा, पत्रिका-सितम्बर 1972 में) 'सांप' कविता का गुजराती में रामचन्द्र देसाई ने इस प्रकार किया—

हिन्दी—

सांप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया ।
एक बात पूछूँ—‘उत्तर दोगे ?
तब कैसे सीखा डसना—
विष कहां पाया ?

गुजराती—

सांप
तुं सभ्य तो थयो नथी
नगरमां वसवानुं पण
फाप्युं नथी तने ।
एक बात पुछूँ—‘उत्तर दईश ?’
तो ने कई रीले शीख्यो डसवानुं
विष पाम्यो क्यांथी ?

भारतीय भाषा में किया गया यह अनुवाद मूल भाषा के अर्थ-सन्दर्भ को पूरी तरह रक्षित रख पाया है ।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता ‘एक पुष्प की अभिलाषा’ का हेमलता देसाई द्वारा गुजराती अनुवाद देखिए जिसमें शब्द-क्रम बदल देने से कविता का तमाम प्रभाव नष्ट हो जाता है—

हिन्दी—

‘चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ ।
चाह नहीं, प्रेमी माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ ।’

गुजराती—

‘सुरवालानी वेणीया
मने गुंथावानी चाह नथी
प्रेमी ओनी प्रेम पालमां
बंधावानी चाह नथी । (‘भाषा’)

यहां इस कविता में कही गई प्रत्येक बात को लक्ष्य-भाषा में प्रस्तुत कर दिया गया है। किन्तु कवि द्वारा रखे गए शब्द-क्रम में निहित लय तथा लहजे से उत्पन्न अर्थ-वक्रता अनुवाद में नहीं आ सकी है। उस कारण से कवि जिस मूल बात पर बल देना चाहता था वह अनुवाद में खो गई है। वैसे इस कविता में सूक्ष्म-गहन संरचना या अर्थ-व्यंजना थी पर अनुवादिका उसे पूरी तरह पकड़ नहीं सकी है। काव्यानुभूति से सही साक्षात्कार न कर पाने का यह सीधा परिणाम है।

काव्यानुवाद की समस्या अलंकारों से भी सम्बन्धित समस्या है। अलंकार काव्य के चमत्कार के लिए ही नहीं होते, वे अभिव्यक्ति के विशेष रूप होते हैं, शैली होते हैं, कथनगत चमत्कार और सम्प्रेषणीयता के माध्यम होते हैं। इसलिए भाषा के कथन-ढंग में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। शब्द पर आधारित अलंकारों का चमत्कार शब्द-विशेष पर टिका होता है, जिसका अनुवाद करना कठिन काम होता है या हो ही नहीं पाता है। बिहारी का दोहा—

‘कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय’—इस पंक्ति का यमक-रक्षित रखते हुए अनुवाद नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में काव्यानुवाद न करके गद्यानुवाद ही करना चाहिए। क्योंकि कनक के समान दो अर्थ दूसरी भाषा में मिलना आवश्यक नहीं है।

अर्थालंकारों के सादृश्य-विधान पर यदि अनुवादक अपना ध्यान केन्द्रित करता है तो उसके अनुवाद में बड़ी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। यहां भी अनुवादक को ध्यान रखना होगा कि वह मात्र अनुकर्त्ता मात्र ही नहीं है वरन उसे एक सर्जक की मनोभूमिका अदा करनी चाहिए।

आज के संसार में जब सांस्कृतिक आदान-प्रदान की भूमिका बढ़ गई है तब तो काव्यानुवाद की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। कविता के अनुवादक को बहुत नियमों में बंधने की बजाय कविता के अर्थ-लय और अनुभूति से तादात्म्यीकृत होते हुए उसका अनुवाद करना चाहिए। इस कविता की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अनुवाद गद्य या पद्य में करना चाहिए। इस प्रकार काव्यानुवाद असम्भव कला नहीं है। हां, यह तलवार की धार पर चलने वाली कठिन कला है।

नाट्यानुवाद

काव्यानुवाद की भांति नाटक का अनुवाद अत्यधिक कठिन कार्य है। दृश्य विधा होने के कारण इसमें वाणी का सक्रिय उपयोग होता है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को न केवल सही पर्यायों की तलाश होती है बल्कि ऐसे पर्यायों द्वारा वाक्य-विन्यास की तलाश होती है जो लक्ष्य भाषा के मौखिक रूप और नाटकीय कार्य व्यापार के अनुरूप हों। उस अनुवाद को भाषा के रूप में प्रस्तुत करके संवाद के रूप में प्रस्तुत करना होता है। लेकिन इस कठिनता के बावजूद नाटकानुवाद व्यापक मात्रा में होते रहे हैं। प्रत्येक भाषा के अपने श्रेष्ठ अभिनेय नाटकों के बावजूद अन्य भाषाओं से नाट्यानुवाद के बिना रंगमंच के उत्थान की योजना पूरी नहीं हो पाती। रंगमंच के उत्कर्ष के युग अनिवार्य रूप से अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ नाटकों के अनुवाद के युग भी होते हैं। रंगमंच का इतिहास भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। शायद ही संसार की कोई समृद्ध भाषा होगी जिसमें शेक्सपियर, इब्सेन, शॉ, जैसे महान् नाटककारों की रचनाएं अनूदित होकर प्रस्तुत न की गई हों। नाटक दृश्य विधा है, इस कारण से नाटक के अनुवाद की समस्या काव्यानुवाद की समस्या से काफी भिन्न है। वैसे तो नाटक काव्य का ही एक भेद है और वे काव्यात्मकता से भरपूर भी होते हैं। कभी-कभार तो नाटक काव्यमय या कविता ही होता है। ऐसी स्थिति में जो कठिनाई काव्यानुवाद में होती है वही कठिनाई नाट्यानुवाद में काफी जटिल रूप में उपस्थित रहती है। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कठिनाइयां नाट्य-विधा के अनुवाद में उपस्थित होती हैं, जिन पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत रही है।

हिन्दी में पिछले सौ वर्षों से लगातार संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से नाटकों के अनुवाद होते रहे हैं। किन्तु इनमें फिर से काफी अनुवादों को जब कोई निर्देशक अभिनय के लिए चुनता है तो स्पष्ट हो जाता है कि ये अनुवाद मूल रचना की मुख्य मौलिक विशेषताओं को हिन्दी में प्रस्तुत करने में कितने अक्षम और अपूर्ण हैं। यह ठीक बात है कि सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद अत्यन्त ज्ञान-साध्य और परिश्रम-साध्य कार्य है पर नाटकों के अनुवाद में अतिरिक्त मूलभूत

कठिनाइयां हैं जिन पर प्रायः अनुवादकों द्वारा समुचित रूप से ध्यान नहीं दिया गया। वे केवल भाषान्तर या रचना के मुख्य विचारों की अभिव्यक्ति का घटिया भावानुवाद ही करते रहे।

नाटकों के अनुवाद की समस्या मूल नाटक के बिम्ब को दूसरी भाषा में उसी तरह के बिम्ब या उसके नजदीकी बिम्ब को रक्षित रखने की समस्या है किन्तु अनुवाद की यह समस्या मूल नाट्य-विधा में ही निहित है क्योंकि नाटक वर्णनात्मक कथा न होकर संवादात्मक कला है। किन्तु यह केवल संवादात्मक कला नहीं है—एक ऐसी संवादात्मक कला जिसमें कार्य-व्यापार की क्षिप्रता होती है और दर्शकों के समक्ष अभिनय के माध्यम से जिसे मूर्त रूप में रूपायित किया जाता है। इस दृष्टि से जो रचना अभिनेय नहीं हैं, उनकी गणना नाटकों में नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार नाटक प्रथम तो उसका रचना-कर्म कठिन एवं जटिल है, दूसरे वह अभिनय जैसे अभिव्यक्ति के एक भिन्न माध्यम से वह जुड़ा है। ऐसी स्थिति में उसका एक भाषा से दूसरी भाषा में भाषान्तर या रूपान्तर—जिसमें मूल नाटक का अनुवाद भी मूल की भांति अभिनेय हो और मूल नाटक की सम्पूर्ण अर्थवत्ता, दृश्य-परिदृश्यों के विभिन्न आयामों को सफल नाट्य-शैली में मूर्तित कर सकने की क्षमता भी हो—बड़ा ही कठिन श्रमसाध्य कार्य होता है। अतः अनुवाद के लिए दो भाषाओं का अच्छा ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, रंग-परम्पराओं की सम्पूर्ण पहचान और मूल नाटक से जुड़ी रंग-परम्परा की विशिष्ट पहचान भी होनी चाहिए। इसका प्रमुख कारण यह है कि नाटक के अभिप्रेत अर्थों-सन्दर्भों और संवादात्मक ध्वनियों की अनुगूँजों का एक बहुत बड़ा अर्थ रंग-विधान में निहित होता है। नाट्य के कार्य-व्यापार, अभिनय-प्रकार, उनकी गतियां, बोलने के ढंग, उतार-चढ़ाव सभी नाट्य-विधा में ऐसे अविच्छिन्न रूप से जुड़े होते हैं कि एक को दूसरे से अलग करते ही नाटक की अन्विति, विशेष रूप से प्रभावान्विति खण्डित हो जाती है। रंग-कर्म की व्यावहारिकता का अनुवाद से गहरा सम्पर्क-सूत्र यदि जुड़ा नहीं है तो सफल नाट्यानुवाद हो ही नहीं सकता। नाटक के संवाद कहानी के संवादों से अपनी प्रकृति में ही भिन्न होते हैं। नाट्य-संवादों का नियामक लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ में छिपा प्रतीयमान अर्थ होता है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि साहित्यिक अनुवाद कार्य से नाटक का अनुवाद कार्य एकदम भिन्न है क्योंकि रंगमंच का व्यावहारिक अनुभव नाटक के अनुवादक के लिए पहली और अन्तिम शर्त है।

नाट्यानुवाद की प्रधान समस्याएं विशिष्ट शिल्पगत समस्याएं हैं। नाट्य-विधा में विषयवस्तु का प्रत्येक पक्ष-कथानक, चरित्र, विचार-तत्त्व, कार्य-व्यापार, अन्तर्द्वन्द्व, संघर्ष, गीति-तत्त्व, भाषा तत्त्व आदि सभी कुछ संवादात्मक कला के

माध्यम से व्यक्त होता है। हर पात्र का व्यक्तित्व विशिष्ट शैली पर बल देता है और इन सबके विशिष्टतामूलक सन्तुलन द्वारा नाटककार अपने मूल उद्देश्य पर आधारित होता है। इसलिए नाटकों के अनुवाद में भाषा और अभिव्यक्ति की प्रयोग-धर्मिता की अपेक्षा रहती है। संस्कृत नाटककार नाटक को 'प्रयोग-विज्ञान' मानते भी रहे हैं। उसमें पात्रों का व्यक्तित्व, उनके बोलने का ढंग, विभिन्न वाक्यांशों पर बल, उसकी शब्दावली एक-दूसरे से ऐसी अभिन्नता में जुड़ी होती है और उन सबके साथ पात्र का मनोविज्ञान आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेशगत या मानसिक अवस्था, आयु, अनुभव, भावात्मक, बौद्धिक स्तर आदि की सम्प्रेषण समस्या ही नहीं होती अपितु अभिव्यक्ति के सम्पूर्ण प्रभाव की बारीक धड़कनें भी रचना में विद्यमान होती हैं। यही कारण है कि नाट्यानुवाद में भाषान्तरण के साथ भौगोलिक स्थानान्तरण होता है। इस भौगोलिक स्थानान्तरण को रक्षित रखने के लिए मूल नाटक के विभिन्न पात्रों की भाषा के शैलीगत सन्तुलन को प्रायः भिन्न उपायों द्वारा बनाए रखना अनुवाद के लिए अपेक्षित हो जाता है क्योंकि मूल नाटक का पात्र दूसरी भाषा में आते ही यदि भिन्न अर्थ और भिन्न व्यक्तित्व धारण कर लेता है तो यह भिन्नाश्रयता अनुवाद-कार्य की सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

हिन्दी में शेक्सपियर और कालिदास के नाटकों के अनुवादों की एक बहुत बड़ी परम्परा है। अनुवाद की इस परम्परा की तीन धाराएँ हैं—

(1) एक तरह के अनुवाद सरल, सपाट और शाब्दिक हैं और जिनका एक मात्र प्रयोजन शेक्सपियर या कालिदास के नाटकों को हिन्दी पाठकों के लिए उपलब्ध कराना है।

(2) इस कोटि में वे अनुवाद और रूपान्तर आते हैं जो 19वीं शताब्दी में पारसी रंगमंच के लिए तैयार किए गए थे। इन अनुवादों और रूपान्तरों में अति नाटकीय स्थितियाँ, षड्यन्त्रों, हत्याओं और योद्धाओं की स्थितियों को उभारा गया तथा नाटकों के काव्य-तत्त्व और उनकी अत्यन्त गहरी नाटकीयता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इन रूपान्तरों में पात्रों के नाम, स्थितियाँ आदि सभी कुछ बदल दिया गया या विकृत कर दिया गया। मूल के साथ इनका सम्बन्ध बहुत थोड़ा रह गया। हिन्दी में इस प्रकार के अनुवादों और रूपान्तरों की परम्परा लगभग आधी शताब्दी तक चलती रही। जैसे 'ओथेलो' का 'जयन्त', 'हैमलेट' का 'खून नाहक', 'King Lear' का 'सफेद-खून', 'एन्टोनी एण्ड क्लियोपेट्रा' का 'काली नागिन' आदि रूपान्तरण इसी परम्परा में हैं।

(3) यह अनुवादों की वह परम्परा है जिसमें प्रायः प्रतिष्ठित नाटककारों और कवियों द्वारा अनुवाद किए गए हैं। ऐसा होने के कारण कभी-कभार इनका सम्बन्ध रंगमंच और प्रदर्शन से भी जुड़ा रहा। इस लहर के सार्थक अनुवाद बहुत अधिक नहीं हैं। यद्यपि भारतीय रंगमंच में इनका योगदान बहुत है। सन् 1964

में जब देश में शेक्सपियर का चतुर्थ शताब्दी समारोह मनाया गया उस समय उनकी महान् कृतियों को रंगमंच के सन्दर्भ में सार्थक बनाने के लिए साहित्य अकादमी ने भी शेक्सपियर के कुछ नाटकों के अनुवाद की योजना का कार्य कराया था। किन्तु यह अनुवाद रंगमंच और प्रदर्शन की परम्परा से न जुड़ पाने के कारण विशेष महत्त्व नहीं पा सके। कवि बच्चन ने 'मैकवेथ' का एक पद्यानुवाद पहले किया था। फिलहाल मैकवेथ का एक पद्यानुवाद कवि रघुवीर सहाय ने किया है। रघुवीर सहाय द्वारा 'मैकवेथ' का यह अनुवाद कवित्त छन्द को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है। कवित्त छन्द के चयन से वह शेक्सपियर के समृद्ध काव्य की सघन ध्वनियों और अत्यन्त नाट्य-गर्भित लयबन्धों को अपने अनुवाद में रूपान्तरित करने में काफी स्थानों पर सफल हुए हैं। किन्तु सफलता की यहां भी एक सीमा रही है। वैसे कवित्त छन्द की इस सफलता का उपयोग राजा लक्ष्मण सिंह भी एक बार कर चुके थे। राजा साहब ने अपने अनुवाद में छप्पय, दोहा, चौपाई, सबैया, शिखरिणी, सोरठा आदि अनेक हिन्दी छन्दों का प्रयोग किया है।

किन्तु रघुवीर सहाय 'मैकवेथ' के पद्यानुवाद में (कवित्त छन्द में) वर्णों के गुम्फन और ध्वनिपरक्ष लय-बन्धों को निर्मित करते हैं। ऐसा करने से नाट्य-उत्तेजना और नाट्य-गाम्भीर्य पैदा होता है। इस प्रकार नाट्य-स्थितियों को रक्षित रखने का रघुवीर सहाय ने पूरा प्रयास किया है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि इसमें शब्द-समूहों और लयबन्धों का ऐसा घनत्व है जो शेक्सपियर की त्रासदी की नाट्य-शक्ति को सम्प्रेषित करता है और साथ ही पात्रों और स्थितियों के अनुकूल भाषा के मुहावरे और उसकी संरचना में बड़ी विविधता लाता है। इस प्रकार भाषा नाटकीय तेवर से गहरा सरोकार स्थापित करती है। रघुवीर सहाय स्वयं अपनी कविताओं के नाटकीय पाठ को सन् 1974 में रंगमण्डल के अभिनेताओं द्वारा अभिनीत करा चुके थे। इसलिए नाटकीय पाठ के अनुवाद का नाट्य-रूपान्तर कैसे तैयार किया जाता है, इसका अनुभव उनके पास मौजूद था।

नाटक के अनुवादक को नाटक के सम्पादन और अभ्यास की पूरी प्रक्रिया में निर्देशक और अभिनेताओं से सम्बद्ध रहना चाहिए ताकि वह अपने अनुवाद की मूल कमियों को समझकर परिष्करण दे सके। हिन्दी में यूनानी त्रासदियों और आधुनिक पश्चिमी नाटकों के अनुवाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने पिछले तीन-चार दशकों से बहुत बड़ी संख्या में कराए हैं। किन्तु उन अनुवादों को देखकर लगता है कि ये अनुवाद रचनात्मक दायित्वों के साथ नहीं किए गए। उनका आलेख इस कारण कमजोर रहा है कि रंगमंच और प्रदर्शन की परम्परा में वे अपना सही चित्र ही निर्मित नहीं कर सके। यह कहना आज भी ठीक लगता है कि रंगमंच और प्रदर्शन परम्परा से बहुत गहराई से न जुड़ने के कारण हिन्दी में संस्कृत के नाटकों के भी अच्छे अनुवाद उपस्थित नहीं हो सके। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'

के तो अनेक अनुवाद हुए हैं किन्तु कालिदास की काव्यात्मक और व्यंजनाधर्मी नाट्यकला अधिकांश हिन्दी आलेखों में दम तोड़ती रही है। जबकि विदेशी अनुवादकों में यह गहरी चिन्ता रही है कि वे प्रदर्शन की नई-नई शैलियों की खोज करें और शेक्सपियर के नाट्यानुवाद के लिए लन्दन के नेशनल थिएटर ने इस प्रकार के अनुवादकों की खोज करते हुए इस कार्य को रचनात्मक दायित्व से जोड़ा है।

अनुवादक की सबसे बड़ी समस्या अपनी भाषा के मुहावरे पर अच्छे अधिकार की रही है। अपनी भाषा का बुनियादी ज्ञान न होने पर अनुवादक दूसरी भाषा से अनुवाद में पीठ फेरकर खड़ा हुआ व्यक्ति दिखाई देता है। सबसे जटिल समस्या बोलियों के अनुवाद की है, जैसे अंग्रेजी शब्दों का और बहुत से तद्भव आंचलिक शब्दों का प्रयोग। कन्नड़ के नाटककार कैलाशम अपने नाटकों में पचास-साठ प्रतिशत अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के नाटकों के लिए प्रश्न उठता है कि क्या इन नाटकों का अनुवाद करते समय अंग्रेजी शब्दों या वाक्यों को बिल्कुल वैसा का वैसा ही बना रहने दिया जाए? क्योंकि मूल नाटक की रक्षा-दृष्टि से तो यही उचित होगा किन्तु अभिनेयता या भाषा की रवानी की दृष्टि से सदैव ऐसा करना शायद ही बेहतर होगा।

अमेरिकी नाटकों में स्थानीय बोलियों (Dialects) का प्रयोग प्रायः होता है। उनके अनुवाद में लक्ष्य-भाषा की किसी बोली का प्रयोग होना चाहिए। मान लीजिए, उनका अनुवाद हिन्दी में किया जा रहा है तो क्या हिन्दी की किसी भी बोली का प्रयोग होना चाहिए और यदि होता है तो किसका? क्योंकि हमारे महानगरों में बोलियों में संवाद बोलने वाले अभिनेता कम मिलते हैं और यदि अभिनेता बोली बोल भी लें तो दर्शकों पर सम्प्रेषणीयता की क्या स्थिति होगी क्योंकि आंचलिक शब्दों की वाक्य-योजना में शब्द-परिवर्तन से ही अर्थ-परिवर्तन हो जाता है।

नाटकीय संवादों का ध्वनि-संयोजन, भाषा के उच्चारण का अपना संगीत और अर्थ-भावव्यंजना—तीनों की रक्षा का प्रश्न अनुवादक के सामने पुनः उठता है। उसके प्रति अनुवादक का संवेदनशील होना बहुत आवश्यक है। अनुवाद की भाषा में ध्वनियों और नाद में, स्वराघात और व्यंजन-ध्वनियों की योजना में विविधता, सुसंगतता और उतार-चढ़ाव होना अनिवार्य है, नहीं तो नाटक रंगमंच पर जाकर असफल हो जाएगा। इसलिए अनुवादक को ध्वनिमूलक सम्भावनाओं से परिचित होना चाहिए।

नाट्यानुवाद का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है वातावरण की सृष्टि। इस परिवेश की रक्षा पात्रों के संवादों में अवश्य होनी चाहिए। शेक्सपियर की त्रासदियों में नियति का आतंकपूर्ण वातावरण संवाद-योजना में पूरी तरह गुंथा हुआ है। यदि

अनुवादक यह प्रभाव उत्पन्न न कर सका तो नाटकीय सौन्दर्य में बड़ी बाधा पड़ेगी। नए नाटककारों में सार्त्र और ब्रेख्त में तो वातावरण एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में विद्यमान रहता है। वे नाटक अनुवादक के लिए आज भी बड़ी चुनौती हैं।

देशकाल की सम्पूर्ण भावमयता और नाटकीय वातावरण का निर्माण दृश्य-परक उपकरणों और प्रकाश-योजना से होता है। अनेक बार अनुवाद में व्यंग्य और हास्य के भाषान्तरण की कठिनाई का कोई सही समाधान नहीं मिल पाता। इसलिए प्रहसनों और कामदियों का अनुवाद करना सर्वाधिक टेढ़ी खीर है। क्योंकि उनके संवाद इतने व्यंजना-प्रधान होते हैं कि उनके समानधर्मी बिम्ब और पर्याय खोजते-खोजते अनुवादक थक जाता है तब भी अनुवाद भावानुवाद से अधिक कुछ नहीं रहता।

विदेशी काव्य-नाटकों के अनुवाद में स्वर-संगीत, वाक्य-विन्यास, पद-रचना, छन्द-विधान, बिम्ब-योजना और परिवेश की समस्या प्रधान रूप से आती है। इलियट के 'Murder in the Cathedral' की सम्पूर्ण नाटकीयता एवं काव्यात्मकता दोनों को सुरक्षित रखते हुए अनुवाद कैसे किया जाए? स्थितिगत कठिनता के कारण अंग्रेजी के काव्य-नाटकों का पद्यानुवाद हिन्दी में अभी तक होने की स्थिति ही नहीं आ पायी है, क्योंकि अभिव्यक्तिगत भंगिमाएं अनुवादक का साथ नहीं देती हैं। संस्कृत नाटकों के अनुवाद का सौभाग्य या दुर्भाग्य यह रहा है कि वे अधिकतर उन शास्त्रीयतावादी मानसिकता में जकड़े पण्डितों द्वारा किए जाते रहे हैं, जिनका रंगकर्मियों से कोई सम्पर्क नहीं रहा। संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान होने पर भी गद्य या पद्य की सहज गति का उनमें अभाव रहा है। इन अनुवादों की सबसे बड़ी कठिनाई है, संस्कृत नाट्य-साहित्य की बिम्ब-बहुल, प्रतीक-बहुल, संगीत-बहुल, समास-बहुल, अलंकार-बहुल भाषा जिसे काव्यात्मक और कल्पनामूलक गद्य में ढालना सिद्धहस्त कवि और गद्यकार के वश की बात ही हो सकती है। भारतेन्दु, राजा लक्ष्मण सिंह सत्यनारायण 'कविरत्न' आदि के अनुवाद तथा मोहन राकेश द्वारा 'मृच्छकटिक' का उल्लेखनीय अनुवाद इसी दिशा-दृष्टि से संपन्न हैं।

अंग्रेजी से होने वाले अनुवादों में उर्दूदाँ भाषा का चलन रंगमंच पर काफी रहा है। पारसी रंगमंच से लेकर अब तक यह प्रवृत्ति काफी देखने को मिलती है। आधुनिक अनुवादकों में यह झुकाव संवभतया भाषा के चलते मुहावरों की तलाश का परिणाम है। इस झुकाव ने कभी-कभी बड़े ही रोचक अनुवाद भी प्रदान किए हैं जैसे अमृतराय द्वारा 'हैमलेट' का अनुवाद।

नाट्य भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों के व्यापक प्रयोग की प्रवृत्ति भी भाषा में जीवंतता लाने की इच्छा का परिणाम है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों का अनुवाद

मानव और विज्ञान का सम्बन्ध बहुत पुराना है। किसी भी वस्तु का विशेष ज्ञान प्राप्त करने की स्पृहा मानव मन में आदिम काल से रही है। वैज्ञानिक ज्ञान को स्पष्ट और तथ्यात्मक रूप देने की दृष्टि से मनुष्य ने उसकी शब्दावली को ठोस, मूर्त एवं सरल बनाकर प्रस्तुत किया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों का मानव के लिए विशेष महत्त्व है। आरम्भ में मनुष्य ने धातु-शोधन, औषधि और शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान किए और उस ज्ञान को संकेत-चिह्नों के माध्यम से लिपिबद्ध किया। इस तरह वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण किया। आज की वैज्ञानिक प्रगति के युग में विभिन्न देशों के वैज्ञानिक अनुसंधानों से आज की जीवंत और तत्काल परिचय रखने के लिए विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी का अनुवाद नितांत आवश्यक है। जो देश जितना अधिक प्रगतिशील है वह उतनी ही शीघ्रता एवं तत्परता से इस कार्य में लगा है।

साहित्यिक अनुवाद का सम्बन्ध जहां विशेष रूप से भाषा की संरचना (Structure) एवं रूप (Form) से होता है वहां वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों का अनुवाद प्रमुख रूप से विषय-वस्तु (Content) पर आधृत होता है। साहित्यिक अनुवाद के सौन्दर्यानुभूतिपरक महत्त्व की तुलना वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों के अनुवाद के व्यावहारिक एवं तथ्यात्मक लक्ष्यों से की जा सकती है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद करते समय किसी भी विषयगत सूचना को एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरित करते समय अनुवादक का ध्यान यथार्थता एवं परिशुद्धता पर सर्वाधिक केन्द्रित होता है। यदि अनुवादक मूल कथ्यों से हट जाता है तो उसकी यह गलती कदापि क्षम्य नहीं हो सकती। दूसरी ओर साहित्य के अनुवादक को कुछ अंश तक स्वतंत्रता होती है कि उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि का अनुवाद करते समय वह मौलिक कल्पना का सहारा ले ले। भाषांतर करते समय उसे रूपांतर की छूट होती है।

साहित्यिक अनुवादक किसी हद तक यह कह सकता है कि तकनीकी विषय के अनुवादक को भाषा के साथ वैसा श्रम नहीं करना पड़ता जैसा कि साहित्य के

अनुवादक को करना पड़ता है। इस तरह वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों का अनुवाद साहित्य के अनुवाद की तुलना में अपेक्षाकृत सरल प्रक्रिया है जिसके लिए अनुवादक को विषय विशेष की शब्दावली का ज्ञान होना मात्र पर्याप्त है। किन्तु यह बात तकनीकी या वैज्ञानिक विषयों के अनुवाद पर बहुत थोड़ी सीमा तक ही लागू हो सकती है। अतः इस बात को अपने आप में अन्तिम समझ लेना भारी भूल होगी। किसी वैज्ञानिक अनुसंधान की जटिल विकास-प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करने वाले किसी लेख या उद्योग सम्बन्धी नवीन तकनीकी कार्य के आरम्भ करने के सम्बन्ध में किसी लेख (जिसमें उस तकनीकी विशेष की प्रक्रिया को प्रस्तुत करने के लिए व्यापक तर्क प्रस्तुत किए गए हों) का अनुवाद करने के लिए भाषा पर वैसा ही सहज और समृद्ध अधिकार अपेक्षित होगा जैसा कि किसी अच्छी साहित्यिक कृति के अनुवाद के लिए अपेक्षित है। इसके विपरीत ऐसी अनेक साहित्यिक कृतियां होती हैं जिनमें विधि, युद्ध, खेलकूद, जैविकी आदि अनेक विषयों को लिया जाता है। ऐसी कृतियों का अनुवाद उन विशेष विषयों की जानकारी के बिना सम्भव नहीं होता।

यह तथ्य अब स्वीकार किया जाने लगा है कि प्रत्येक प्रकार का अनुवाद—चाहे वह साहित्यिक हो अथवा वैज्ञानिक या तकनीकी—विशेष प्रकार के मानदण्डों द्वारा नियंत्रित होता है तथा वे मानदण्ड मूल पाठ के स्वरूप एवं प्रकार पर आधारित होते हैं तथा कोई भी मानदण्ड इतने जड़ एवं स्थिर नहीं होते कि उनमें कोई परिवर्तन ही सम्भव न हो। इसके विपरीत ये मानदण्ड गत्यात्मक होते हैं जिनमें परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन किया जा सकता है।

यूनानी वैज्ञानिकों ने गणित, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र आदि के क्षेत्र में आरम्भ से ही काम किया और आरम्भकाल से ही वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माणकार्य होता रहा। गणितज्ञ यूक्लिड ने अपनी 'Element of Geometry' नामक पुस्तक से अनेक पारिभाषिक शब्दों को ठोस और मूर्त रूप में प्रयुक्त किया। स्वयं अरस्तू इनसे पूर्व जीव-विज्ञान, भौतिक-शास्त्र, गणित और विज्ञान के अन्य क्षेत्रों की शब्दावली गड़ते रहे थे। इस भाषा में लक्षणा तथा व्यंजना लाने का प्रयास आदर का नहीं, निन्दा का अधिकारी बनता है। पुराने जमाने में वैज्ञानिक साहित्य भारत, अरब, यूरोप आदि देशों में पद्य में लिखा जाता था। चिकित्सा आदि पर मध्यकाल से लिखे गए छन्दोबद्ध ग्रन्थ मिलते हैं। छन्द को याद रखने में सुविधा होती थी। किन्तु इसका अर्थ वहां भी साहित्यिक छन्द नहीं था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस व्यर्थ की छन्दबद्धता पर प्रहार किए और रायल सोसाइटी की यह बात मान ली गई कि वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा स्पष्ट एवं तार्किक गद्य में होनी चाहिए। आज के वैज्ञानिकों ने विकास-परम्परा में यह बात गांठ बांध ली है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद की भाषा सहज, सरल तथा

अभिधाप्रधान होनी चाहिए।

वैज्ञानिक विषयों के अनुवादक को साहित्यकार की भांति शब्दों को तौलने के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। हां, उसे दृढ़ता के साथ केवल वे ही शब्द चुनने चाहिए जिनका पारिभाषिक अर्थ सुनिश्चित हो और जिनका अर्थ-संदर्भ किसी भी स्थिति में तथ्य से दूर न जा पड़े। इसलिए पूरे अनुवाद में एक निश्चित शब्दावली तार्किक वैज्ञानिकता के लिए अपनाई जानी चाहिए। प्रतीक चिह्नों को भी उनके सुनिश्चित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए जिससे कि स्रोत-भाषा में निहित अर्थ लक्ष्य-भाषा में प्रस्तुत होने पर समझने में देर न लगे। यदि कोई नया प्रतीक चिह्न है तो विशेष टिप्पणी द्वारा उसे स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए।

इस अनुवाद में साहित्यिक अनुवाद की भांति कुछ छोड़ने या कुछ जोड़ने की गुंजाइश नहीं होती; क्योंकि सच्चा अनुवादक इसमें छोड़ने या जोड़ने की बात को छोड़कर कथ्य को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ अभिधा में अनूदित करता चलता है। इसी अर्थ में यह सम्पूर्ण अनुवाद है। क्योंकि स्रोत-भाषा का सम्पूर्ण कथ्य लक्ष्य-भाषा में सम्पूर्णता से लाया जाता है।

यह समझकर चलना चाहिए कि वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद इन विषयों का जानकार व्यक्ति आसानी से कर सकता है। जैसे-जैसे विश्व में वैज्ञानिक जानकारी के प्रति आदर बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे अनुवाद कार्य भी प्रगति कर रहा है। लैटिन, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, जापानी आदि भाषाओं में ज्ञान के साहित्य (Literature of knowledge) का बहुत अनुवाद हुआ है और हो रहा है। लम्बे अरसे तक दासता में जकड़े रहने के कारण भारतवर्ष में वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति बड़ी देर से आरम्भ हो सकी जिसका सीधा परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ। किन्तु आज स्थिति वैसी नहीं रही है और यह कार्य बहुत अधिक गति से किया जा रहा है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद सूचना प्रधान होता है। अतः शैली की कलात्मकता यहां वांछित नहीं होती। लेकिन स्वच्छता जरूर अपेक्षित होती है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति-प्रधान साहित्य की तुलना में वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद कोई समस्या उत्पन्न नहीं करता। अतः अनुवादक को शैली की सजावट पर ध्यान केन्द्रित न करके वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य के पारिभाषिक शब्दों की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

यह संयोग की बात है कि विश्व की अधिकांश समृद्ध भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों का अभाव नहीं है। इसका प्रधान कारण केवल यही है कि इन भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की समृद्ध परम्परा विद्यमान है। ऐसे देश आरम्भ से ही जिन नवीन वस्तुओं और संकल्पनाओं को उत्पन्न करते रहे हैं उनके लिए साथ ही साथ शब्द भी गढ़ते रहे हैं। इस प्रकार की शब्दावली का एक निश्चित प्रयोग आधुनिक

94 अनुवाद प्रक्रिया

काल तक लगातार हुआ। इसलिए परम्परागत विज्ञान और नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के संदर्भ में ये भाषाएं पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से समर्थ और सम्पन्न रहीं। ऐसी स्थिति में पारिभाषिक शब्दावली की कोई बड़ी समस्या इन भाषाओं के सामने कभी खड़ी नहीं हुई। इन भाषाओं का अनुवादक विषय की भीतरी जानकारी प्राप्त करता हुआ अनुवाद के क्षेत्र में आगे बढ़ता रहा।

भारतीय भाषाओं में विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का अभाव विज्ञान की संपन्न परंपरा के अभाव में निहित है। पश्चिम में आधुनिक विज्ञान का जिस ढंग से विकास हुआ वैसा हमारे यहां नहीं हुआ। यद्यपि प्राचीन काल में भारत में विज्ञान का समृद्ध विकास हुआ था और भौतिक शास्त्र, खगोल विज्ञान गणित आदि की शब्दावली संस्कृत में विकसित हुई थी। लेकिन आधुनिक विज्ञान का क्षेत्र पश्चिम ही रहा है। उनके यहां एक-एक विषय की अनेक शाखाएं-उपशाखाएं फैलीं और बढ़ीं हैं। उन विषयों का इतना विकास हो गया और उनकी शब्दावली बहुत व्यापक हो गई। इस विज्ञान से हमारा परिचय अंग्रेजी के माध्यम से ही हुआ और शिक्षा की भाषा भी अंग्रेजी होने के कारण इस क्षेत्र में लेखन बहुत कम हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली का अपेक्षित विकास नहीं हुआ। हां, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना के पश्चात् इस दिशा में फलप्रद प्रयास हुए हैं। अब अनुवाद करते समय इस शब्दावली का इस्तेमाल अपेक्षित है। इस दिशा में यह माना गया है कि वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों का अनुवाद करते समय स्रोत-भाषा के पारिभाषिक शब्दों के समकक्ष शब्द यदि लक्ष्य-भाषा में न मिलें तो अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार उनका अनुकूलन कर लिया जाए। अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में ग्रहण करने में हिचकना नहीं चाहिए। इतने से भी पूर्ति न हो तो अपनी भाषा की धातुओं, उपसर्गों, प्रत्ययों के आधार पर नवीन शब्द निःसंकोच निर्मित करने चाहिए।

अनुवादक को वैज्ञानिक या तकनीकी साहित्य के विषय-विशेष का जितना गहन और सूक्ष्म ज्ञान होगा, अनुवाद-कर्म उसके लिए उतना ही सहज रहेगा। विषय के ज्ञान के अभाव में भयंकर तथ्यात्मक भूलें होने की सम्भावना रहती है।

लोकोक्तियों तथा मुहावरों का अनुवाद

लोकोक्तियां और मुहावरे समाज के लिए सामूहिक अनुभव की ठोस अभिव्यक्ति होते हैं। इसलिए डच भाषा में कहावत को 'दिन-प्रतिदिन के अनुभव की पुत्री' कहा गया है। इनमें मानव जाति के सम्पूर्ण अनुभवों का निचोड़ मौजूद रहता है। इसलिए ये भाषा में लवणवत् माने गए हैं। अरबी लोग इन्हें शब्दों का दीपक कहते हैं। कवि टेनीसन ने कहा है—“ये वे रत्न हैं जो काल की खुली तर्जनी पर सदा चमकते रहते हैं।” इस प्रकार पुरखों के अनुभव भरे वचन और जनसाधारण की उक्तियां लोकोक्ति अथवा मुहावरे के माध्यम से जीवित रहते हैं। लोकोक्तियां तथा मुहावरे भाषा को जितना अधिक प्रभावशाली बनाते हैं, अनुवाद करते समय वे उतने ही प्राणलेवा सिद्ध होते हैं।

सर्वप्रथम तो लोकोक्ति तथा मुहावरे का अन्तर समझना अनुवादक के लिए बहुत जरूरी शर्त है। लोकोक्ति में एक पूर्ण सत्य या विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है। वह दूसरे वाक्य में अंश नहीं बनती, अपितु एक स्वतन्त्र वाक्य होती है। मुहावरा स्वतन्त्र वाक्य नहीं होता। वह किसी वाक्य में रखे जाने का सहारा खोजता है। उदाहरणार्थ—‘ठण्डा लोहा गर्म लोहे को काटता है’ एक लोकोक्ति है तथा ‘टेढ़ी खीर’, ‘दात खट्टे करना’ आदि मुहावरे हैं। कहावतें और मुहावरे प्रायः किसी अनुभव-सिद्ध कहानी का सार होते हैं। इनके माध्यम से की गई अभिव्यक्ति लोक-जीवन और लोक-चेतना की ज्यादा गहरी पकड़ से युक्त होती है। इसलिए उसकी लाक्षणिकता और व्यंजकता अपने में अर्थ गर्भत्व की एक बहुत बड़ी उपलब्धि को संचित किए होती है। लोक-जीवन की अनेक स्थितियां लोकोक्ति से ही व्यंजित होती हैं। लोकानुभव की कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरने के बाद ही कोई कथन लोकोक्ति बनता है। ऐसी स्थिति में इसका अनुवाद एक बड़ी चुनौती का रूप होता है।

लोकोक्तियों और मुहावरों को स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करते समय अनुवादक का प्रयास होता है मूल शब्दार्थ के समानार्थकों की दोनों भाषाओं में खोज करना।

लोकोक्तियों का अनुवाद

लोकोक्तियों में सांस्कृतिक-ऐतिहासिक संदर्भ का पूरा लोक-रहस्य अंतर्निहित होता है, इसलिए उनके अभिव्यंजक शब्द विशिष्ट-विशिष्ट अर्थ-संदर्भों के वाहक होते हैं। वे सामान्य भाषा की सरल उक्तियां नहीं होतीं, बल्कि लोकानुभव की ऐसी ध्वन्यर्थमयी उक्तियां होती हैं जिनका अनुवाद बड़ा ही कठिन पड़ता है। उनमें सम्पूर्ण लोक-जीवन रचा-बसा रहता है। अनुवादक प्रत्येक देश के लोक-जीवन की और भाषा की भीतरी से भीतरी पकड़ सहजता से नहीं कर सकता। अतः भाषा में इनकी अभिव्यक्तियों पर अधिकारपूर्वक अनुवाद करना असम्भव तो नहीं, किन्तु बड़ा ही जटिल कार्य होता है। एक व्यक्ति तीन-चार भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। किन्तु आज के युग में सभी भाषाओं पर अधिकार होने का दावा हास्यास्पद ही प्रतीत होगा।

एक ही देश की लोकोक्तियां प्रादेशिक संस्कृति के रंग लिये होती हैं और उन स्थानीय रंगों (Local Colours) में निहित अर्थ-च्छायाओं, सूक्ष्म बारीकियों को पकड़ने में उस देश के अन्य भागों के लोगों को भी कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में दूसरे देश और संस्कृति के लोगों के लिए उन्हें पकड़ पाना तो बहुत बड़ी बात है। भारतवर्ष में विभिन्न भाषाओं और बोलियों की कहावतें अलग-अलग ढंग की शैलियों और पद्धतियों की हैं। उनमें समानता के बावजूद काफी असमानता है। भौगोलिक-सामाजिक, आर्थिक स्थितियां, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास, आचार-विचार, जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, शिक्षा-दीक्षा आदि सभी का भीतरी प्रभाव उन पर तैर रहा है। पंजाबी की कहावत है 'नालायक पुत्तर दा बस्ता भारी'। अब हिंदी में इसे 'नालायक बेटे का बस्ता भारी' कहते हैं तब इसमें कुछ औपचारिकता-सी दिखाई देने लगती है लेकिन जब कहते हैं कि 'नालायक पूत का बस्ता भारी', तो 'पूत' शब्द में जो बोलीगत सहायता मिलती है वह पंजाबी पुत्तर के पर्याप्त निकट लगती है क्योंकि उसमें एक ठेठ देसीपन का बोध होता है।

हर भाषा की लोकोक्तियां, नवीन उपमाओं और नवीन भावों की निजता में एक विशिष्ट ढंग की प्रतिभा का संकेत देती हैं। अतः लोकोक्तियों का अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं के स्रोतों को भलीभांति समझ लेना चाहिए। शब्दशः अनुवाद करने का प्रयास अधिकतर असफल हो जाता है। मूल कहावत के अलंकार और तुकबन्दीगत आग्रहों को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में लाने में अनुवाद असमर्थ रहता है। उदाहरणार्थ हिन्दी की कहावत है—

‘टके की बुढ़िया, नौ टका सिर मुड़ाई’

इसका तुकबन्दीगत अनुवाद हुआ—

‘quarter worth verry, and three quarters to carry.’

यहां 'Verry' और 'Carry' की तुकबन्दी ठीक बैठी है और अनुवाद भी मूल के काफी नजदीक है। लेकिन ऐसा प्रायः नहीं होता। अनुप्रास के साथ प्रायः सुन्दर अनुवाद नहीं हो पाता क्योंकि लोकोक्ति अनुस्यूत दृष्टांत काफी गड़बड़ करता है। भारतीय कहावतें प्रायः कुटुम्ब-पद्धति तथा पाप-पुण्य के सम्बन्ध में समान विचार रखने के कारण भावों में समानता रखती हैं अतः भारतीय भाषाओं की लोकोक्तियों का हिन्दी अनुवाद उतनी कठिन समस्या नहीं खड़ी करता जितनी कि विदेशी भाषाओं की लोकोक्तियों का। इसी तरह भारतीय धारणाओं और विधियों को अंग्रेजी में अनूदित करना कठिन हो जाता है।

प्रादेशिक भाषाएं एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। किसी स्थिति विशेष में एक देश का प्रभाव दूसरे देश पर पड़ता है। इस तरह से लोकोक्तियों का आदान-प्रदान बिना रोक-टोक के होता रहता है। अनेक बार इनमें इतनी समानता होती है कि उनका अनुवाद काफी सुविधा से हो जाता है। शब्दानुवाद यदि न भी हो पाए तो अत्यन्त सहज सन्निकट भावानुवाद हो जाता है। उदाहरणार्थ—'Barking dogs seldom bite'

हिन्दी में इसी से मिलती-जुलती कहावत है—

‘जो गरजते हैं वे बरसते नहीं’

किन्तु गुजराती में बिल्कुल अंग्रेजी जैसी ही कहावत मिल जाती है—

‘मसतो कूतरो करढतो नयी’

लोकोक्तियों के अनुवाद में एक कठिनाई यह भी आती है कि अनुवादक का प्रायः साथ देने वाला कोश—उसका साथ बहुत देर तक नहीं दे पाता। शब्दकोश में लोकोक्तियां प्रायः नहीं होतीं और होती भी है तो इतनी कम होती हैं कि उनसे अनुवादक का काम नहीं सधता। द्विभाषिक, त्रिभाषिक लोकोक्ति कोश बनाने की वही कठिनाई है जो इनके अनुवाद में सामने आती है क्योंकि थोड़े-बहुत शब्द समानार्थी मिल पाते हैं और अधिकतर भिन्नार्थी। अतः लोकोक्तियों की पूरी अर्थ-व्यंजना एक भाषा से दूसरी भाषा में भगीरथ प्रयास करने पर भी अर्थ-गंगा नहीं बहा पाती।

स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में लोकोक्तियों का व्याख्यात्मक अनुवाद (Interpretative translation) हो सकता है। सही अनुवाद के लिए स्रोत-भाषा के अर्थ को पकड़ते हुए लक्ष्य-भाषा में उस अर्थ को रक्षित रखना जरूरी होता है इस प्रक्रिया को अपनाने से अनुवाद में अर्थ और भाव की पूरी रक्षा हो जैसे हिन्दी की कहावत है—‘तवा हांडी को काली बताए’। इसका अंग्रेजी में कई तरह से अनुवाद हो सकता है—

(i) 'The pan calls the pot black.'

(ii) 'The Kettle calls the pot black.'

- (iii) 'The frying pan says to the pan'—'About brows'
- (iv) 'The sooty oven mocks the black chimney.'
- (v) 'The klin calls the oven burnt house.'
- (vi) 'The chimney sweeper bids the collier wash his face'

इस प्रकार यदि अनुवादक कहावत का अर्थ पकड़ लेता है तो उसे अनुवाद में कई तरह से प्रस्तुत कर सकता है जिसमें शब्दों को बदलने पर भी अर्थ सुरक्षित रहता है। कभी-कभी ऐसी लोकोक्ति होती है जो ऐसा बिखराव लिये होती है कि लक्ष्य-भाषा में उसे सूत्रबद्ध करना पड़ता है और यदि उसे सूत्रबद्ध न किया जाए तो अर्थ ही खो जाता है—'बछिया घर में रही तब तक सुहागन, पर बिक गई तब अभागिन।' इसके समकक्ष कई कहावतें हो सकती हैं—

- (i) 'The crow thinks her own bird fairest.'
- (ii) 'Every potter praises his own pot, and more if it is broken.'
- (iii) 'Each priest praises his own relics.'

किंतु ऐसी कहावतों का यदि शब्दानुवाद कर दिया जाए तो सूत्रबद्धता चाहे न आए किन्तु अर्थ रक्षित रहता है—

'The liefer was auspicious so long as it was with us, when it was sold out to others it became inauspicious'

इस बिखरी कहावत का अर्थ व्यंजित करने वाली एक अन्य कहावत हिन्दी में ही मौजूद है—

'हर कुम्हारन अपने ही मटके सराहती है।'

इस प्रकार स्रोत-भाषा की लोकोक्ति खण्डित हुए बिना लक्ष्य-भाषा में उतर आती है। किन्तु 'On the horns of a dilemma' को 'सांप के मुंह में छछूंदर, निगले तो अंधा, उगले तो कोढ़ी' अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें समानार्थी खो गए हैं और अंग्रेजी की उपरोक्त कहावत से अधिक गहरी अर्थव्यंजना हिन्दी की यह कहावत प्रस्तुत नहीं कर रही है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दो भाषाओं की लोकोक्तियों में विचार समान होते हैं किन्तु उनका प्रभाव समान नहीं होता। जैसे—'A little pot is soon hot' से मिलती-जुलती कहावत है: 'अधजल गगरी छलकत जाय' या 'क्षुद्र नदी बढ़ि चलि इतरानी'। इन कहावतों में विचार-साम्य होने के बावजूद प्रभाव साम्य नहीं है।

स्रोत-भाषा की लोकोक्ति के समान अर्थ वाली लोकोक्ति लक्ष्य-भाषा में खोजी जानी चाहिए। प्रयास करने पर यह कार्य कठिन नहीं होता जैसे संस्कृत

की कहावत है—

संस्कृत—शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः ।

हिन्दी—शिष्य के अपराध के लिए गुरु को दण्ड ।

अंग्रेजी—For the fault of a pupil the teacher has been punished.

ऐसी समान आशय की लोकोक्तियां भी होती हैं जो लगभग सभी भाषाओं में नहीं तो अनेक भाषाओं में मिल जाती हैं—

हिन्दी—‘एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा ।’

पंजाबी—‘इक करेला दूजा निम चढ़्या ।’

गुजराती—‘कारेला ने वली नीम पर चढ़ा ।’

उर्दू—‘एक तो मियां दीवाने ऊपर से खाई भांग ।’

अंग्रेजी—‘Already a mad cowherd and moreover she had swallowed the garlic.’

समग्रतः कहा जा सकता है कि अनुवादक का प्रयास यह होना चाहिए कि लोकोक्ति का मूल आशय नष्ट न हो ।

मुहावरों का अनुवाद

बहुत से मुहावरे ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं जैसे — ‘द्रौपदी का चीर होना’, ‘बीरबल की खिचड़ी होना’, ‘सुदामा के तंदुल’, ‘राम-बाण औषधि’, ‘शबरी के बेर’ आदि । कुछ ऐसे भी मुहावरे होते हैं जो लोकानुभव को विशिष्ट ढंग से संकेतित करते हैं । अत्यधिक प्रभावशाली ध्वनिपरक योजना के कारण मुहावरों का अनुवाद बड़ा ही कठिन काम है । इसलिए अनुवादक को स्रोत-भाषा में से किसी मुहावरे को लक्ष्य-भाषा में लाते समय शब्दार्थ की समानता पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए । चूंकि मनुष्य स्वभाव एक है, भिन्न दिखाई देता हुआ भी वह भिन्न नहीं है, अतः अनेकता में एकता की खोज का सिद्धान्त यहां हमारी समस्या का सही समाधान होता है । हर भाषा की प्रवृत्ति और प्रयोग, शक्ति अलग होने से मुहावरा अलग ढंग की शैली और अर्थव्यंजना ग्रहण कर लेता है । इसलिए उसका एक अलग ढंग का शब्द-बिम्ब और फिर शब्द-बिम्ब से अर्थ-बिम्ब बनता है । अतः अनेक भाषाओं के मुहावरों में तुलनात्मक समानता की खोज करने का प्रयास होना चाहिए । असमानताओं को जल्दी से टाल नहीं देना चाहिए अपितु उन पर बहुत थमकर विचार करना चाहिए । ऐसा करने से नई सूझबूझ पैदा होती है और मुहावरा अपना अर्थ व्यक्त करने लगता है । हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनेक मुहावरे ऐसे हैं जिनकी समानता दर्शनीय है—

अलादीन का चिराग—Alladin's lamp.

लालफीता शाही—Red tapism.

लुढ़कना लोटा—A rolling stone.

झगड़े की जड़—An apple of discord.

हवाई किला बनाना—To make castle in the air.

एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होना—Birds of the same feather.

Man in thousand—हजारों में एक ।

To blow one's own trumpet—अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना ।

A cry in wilderness—अरण्यरोदन ।

Crocodile tears—मगरमच्छी आंसू ।

To burm one's finger—हाथ डालते ही उंगली जलना ।

A long face—चेहरा उतरना ।

To strike the iron while it is hot—गर्म लोहे पर चोट करना ।

To poke one's nose in other affairs—दूसरे के काम में टांग अड़ाना ।

To keep in the dark—अंधेरे में रखना ।

To throw trump card—तुरप चाल चलना ।

To put one's head in the lion's mouth—जबरदस्त के हाथ में गर्दन देना ।

To leave no stone unturned—कोई कसर न रखना ।

To be at daggers drawn—कुत्ता-बिल्ली-सा बैर होना ।

To be true to one's salt—नमक हलाल होना ।

To bell the cat—बिल्ली के गले में घंटी बांधना ।

To cast the pearls before a swine—भैंस के आगे बीन बजाना ।

To have a thing at one's finger tips—उंगलियों पर गिन रखना ।

To throw dust in a person's eye—आंखों में धूल झोंकना ।

To make mountain of a mole hill—राई का पहाड़ बनाना ।

To nip in the bud—पैदा होते ही गला घोट देना ।

कुछ ऐसे मुहावरे भी हैं जिन्हें लक्ष्य-भाषा में सीधे अंतरित नहीं किया जा सकता । शब्दों के हेर-फेर से अर्थ अभिव्यक्त किया जा सकता है । जैसे 'Achilles heel' का अर्थ होता है किसी व्यक्ति की परिस्थितियों या व्यक्तित्व का कोई कमजोर अंश । यह मुहावरा सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ा है अतः दूसरी भाषा में इसका अनुवाद नहीं हो पाता । जब तक सांस्कृतिक संदर्भों के स्रोतों तक नहीं पहुंचा जाएगा तब तक सही अर्थ पकड़ना सम्भव नहीं है । इसी तरह हिन्दी मुहावरे 'शबरी के बेर' का अर्थ उसके संदर्भगत परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है ।

यदि स्रोत-भाषा के मुहावरे के शब्द और अर्थ की दृष्टि से समान मुहावरा

लक्ष्य-भाषा में नहीं मिलता तो ऐसी स्थिति में अभिप्रेत अर्थ को ध्यान में रखते हुए भावानुवाद कर दिया जाना चाहिए, उदाहरणार्थ 'A close fistcd man' के समानांतर कोई मुहावरा नहीं सूझता तो इसका अभिप्रेत अर्थ लेकर इसका अनुवाद 'कंजूस व्यक्ति' या 'मक्खीचूस व्यक्ति' किया जा सकता है। ऐसे अवसर पर लक्ष्य-भाषा की मूल प्रकृति का ध्यान रखना चाहिए। स्थिति विशेष में नया मुहावरा भी बनाया जा सकता है जैसे 'broken heart' के लिए 'भग्न हृदय' बना लिया गया। 'Herculean effort' का अनुवाद 'हरक्यूलियन प्रयत्न' की वजाय 'भगीरथ प्रयास' करने से यह हिन्दी की प्रवृत्ति एवं भाषिक सहजता के अधिक निकट बैठता है।

यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा में जाते समय मुहावरा कहीं भिन्नार्थक या हास्यास्पद स्थिति तो ग्रहण नहीं कर लेता। व्यंजना प्रधान मुहावरे का अभिधापरक अनुवाद करना भारी भूल होगी। 'White elephant' का अनुवाद 'सफेद हाथी' कर देना बहुत उपयुक्त नहीं है क्योंकि वस्तुतः 'white elephant' का अर्थ होता है 'हानिप्रद स्वत्व' और हिन्दी में इस अर्थ में प्रचलित मुहावरा है 'महंगा सौदा'। इस सम्बन्ध में अनुवादक के लिए विशेष सतर्कता एवं सावधानी नितांत आवश्यक है।

हर भाषा का भूगोल, इतिहास और अर्थशास्त्र अलग होने से अभिव्यक्ति भी उसकी निजी हो जाती है। अतः अनुवादक को सदैव शब्दानुवाद न करके जहाँ अपेक्षित हो वहाँ भावानुवाद करना चाहिए। 'To give a cordial welcome' का अर्थ है हार्दिक स्वागत करना। किन्तु हिन्दी के मुहावरे के माध्यम से इसका भावानुवाद भी किया जा सकता है—'पलक पांवड़े बिछाना' या 'आंखों के गलीचे डाल देना' इस प्रकार मुहावरों का अनुवाद शब्द-प्रतिशब्द न करते हुए सम्पूर्ण मुहावरे को भाषिक इकाई के रूप में रखकर किया जाना चाहिए।

यदि स्रोत भाषा के मुहावरे का सही अर्थ शीघ्र ही पकड़ में नहीं आता और अनुवादक जल्दी में उसका शब्दानुवाद कर बैठता है तो अर्थ के अस्पष्ट होने की सम्भावना रहती है। ऊपर 'white elephant' के लिए 'सफेद हाथी' पर्याय का उदाहरण ऐसी ही जल्दबाजी का परिणाम है। ऐसी स्थिति में स्रोत-भाषा के अनुभवी और जानकार व्यक्तियों की सहायता लेना बेहतर होगा।

निष्कर्ष यह है कि लोकोक्तियों तथा मुहावरों के अनुवाद में स्रोत-भाषा के मुख्यार्थ और शब्द-संदर्भ पर ध्यान केन्द्रित रखने से अनुवादक भारी गलतियों से बच सकता है।

अनुवाद की समस्याएं

अनुवाद की समस्या पर किए गए सभी अध्ययन यह स्वीकार करते हैं कि अनुवादक को पाठगत सामग्री के भाषा और भाव को समझकर उसे लक्ष्य-भाषा में अन्तरित करना होता है। किन्तु यह इतना सरल कार्य नहीं है जितना ऊपर से दृष्टिगत होता है। इस कार्य की अपनी भीतरी कठिनाइयां हैं, जिन्हें व्यावहारिकता के धरातल पर समझा जा सकता है।

प्रत्येक देश और काल की विशेष सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियां होती हैं जो काल-विशेष के सृजन-कर्म में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। अनुवाद किए जाने पर स्रोत-भाषा की ये परिस्थितियां लक्ष्य-भाषा के लिए कभी-कभी एकदम नयी, अजनबी और चुनौती भरी होती हैं। ऐसी स्थिति में समानार्थक शब्दों को सही सन्दर्भों में खोजना और उनमें वही अर्थवत्ता निश्चित करना जो स्रोत-भाषा में विद्यमान रही है, अपने आप में बड़ी समस्या बन जाती है।

स्रोत-भाषा के शब्दों, वाक्य-विन्यास के विशेष लहजे की विशिष्टतापरक अभिव्यंजकता के समकक्ष लक्ष्य-भाषा में प्रायः उपलब्ध न हो पाने की स्थिति में अनुवादक को बड़ी छटपटाहट महसूस होती है। उदाहरण के लिए अनुवाद में एक वाक्य आता है—‘हाल ही में खुले सेवाश्रम में अभिनव ने लगभग पन्द्रह दिन पहले ही काम शुरू किया था।’ यहां ‘सेवाश्रम’ ऐसा शब्द है जिसके लिए अंग्रेजी में अनुवाद समकक्ष खोजना कठिन है। यह मूलतः संस्कृत का शब्द है, आधुनिक सन्दर्भ में इसका अर्थ होगा—‘समाज सेवा-केन्द्र’। आश्रम शब्द प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृति से जुड़ा है। यदि इस शब्द के लिए ‘Acentre for social service’ लिखते हैं, तो ‘सेवाश्रम’ शब्द में निहित सम्पूर्ण अर्थगर्भीव्यंजना और शब्द में भरा हुआ गांधीवादी अर्थ दूर पड़ जाएगा जिससे इस शब्द का सन्दर्भ जुड़ा है। ‘आत्मानुशासन’, ‘संयम’, ‘अहिंसा’ आदि सभी इसी से जुड़े अर्थ-सन्दर्भ हैं—अर्थ-सन्दर्भ से हटाते ही यह शब्द भटक जायेगा। अतः अनुवाद करते समय ‘सेवाश्रम’ का ‘लिप्यन्तरण’ ही बेहतर होगा। इससे अनुवाद में एक स्थानीय रंग का प्रवेश होगा, किन्तु प्रश्न यह उठेगा कि भारतीय पाठक या गांधीवाद से परिचित

पाठक तो 'सेवाश्रम' का अर्थ समझ लेगा, किन्तु विदेशी भाषा और संस्कृति के ऐसे पाठक, जो इस शब्द-सन्दर्भ से परिचित नहीं हैं, को इसे समझने में कठिनाई होगी। इसी स्थिति में या तो 'सेवाश्रम' को समझाने के लिए अलग से विशिष्टार्थक टिप्पणी दी जाए या शब्दगत सन्दर्भ को कोष्ठक में खोलकर रखा जाए।

अनुवादक को स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा की गम्भीर जानकारी के लिए दोनों भाषाओं से जुड़ी संस्कृति की व्यापक जानकारी होगी तभी वह दोनों भाषाओं के सांस्कृतिक सन्दर्भों को सही परिप्रेक्ष्य में पकड़ सकेगा। साथ ही सही सन्दर्भों में दोनों भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ठीक शब्द को ग्रहण कर सकेगा।

कभी-कभी ऐसा होता है कि अनुवादक के समक्ष जो समस्या खड़ी होती है, वह सांस्कृतिक अननुवाद्यता की होती है। स्रोत-भाषा पाठ में मौजूद परिस्थितिगत तत्त्व लक्ष्य-भाषा से सम्पूक्त संस्कृति में बिल्कुल अनुपस्थित होता है। जैसे परम्परागत भारतीय घरों का शब्द—'चौका'। इसे अंग्रेजी शब्द 'Kitchen' के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। क्योंकि दोनों में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के भिन्न-भिन्न अर्थ विद्यमान हैं। भारतीय शब्द 'चौका' या 'रसोई' में 'भोजन पकाने की शुद्धता और पारिवारिकता का अर्थ विद्यमान है तथा यह शब्द भारतीय गृहिणी के समस्त त्याग-सौजन्य की अंतर्मान-सिकता से जुड़ा है। यदि हम किसी कहानी या कविता में 'कन्नौजी चौका' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो विदेशी के लिए इसकी अर्थ-व्यंजना खोज पाना कठिन पड़ेगा। क्योंकि वहां चौका उनके 'सम्पूर्ण छुआछूत पाखण्ड' का प्रतीक है जैसे—

आठ कन्नौजिया, तेरह चूल्हे

तहं फिरै ऊले ऊले ॥

इसके लिए Kitchen अनुवाद किया जायेगा तो वांछित अर्थ ही नहीं आ पाएगा। क्योंकि वहां 'किचिन' घर से अलग केवल भोजन पकाने की जगह है और यहां 'चौका' घर के भीतर सम्पूर्ण रसायन से भरा शब्द है।

सांस्कृतिक अननुवाद्यता की सर्वाधिक बड़ी कठिनाई यह है कि जब कभी स्रोत-भाषा के किसी अननुवाद्य शब्द के लिए लक्ष्य-भाषा में सन्निकट शब्द को रख देने पर लक्ष्य-भाषा का वाक्य-विन्यास अटपटा और असामान्य-सा हो जाता तब लक्ष्य-भाषा स्रोत-भाषा को सोख जाती है। दूसरे शब्दों में इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक अननुवाद्यता वास्तव में वाक्य-विन्यासगत अननुवाद्यता होती है। यहां पर लक्ष्य-भाषा में स्रोत-भाषा के समकक्ष खोजने की समस्या होती है। अतः उसे एक प्रकार की 'भाषिक अननुवाद्यता' भी कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ जापानी भाषा का एक शब्द है—'यूकाता'। यह 'यूकाता'

एक ढीला-ढाला वस्त्र होता है, जिसे वहां स्त्री-पुरुष दोनों ही पहनते हैं और जापान के होटलों या सरायों में ठहरने वाले व्यक्तियों को होटल की ओर से दिया जाता है। यह एक ऐसा वस्त्र है जो घर-बाहर, सोने-तैरने से लेकर सभी कामों में पहन लिया जाता है। अगर इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया जाए तो समस्या यह आती है कि अंग्रेजी में अलग-अलग समयों पर पहने जाने वाले वस्त्रों के नाम अलग-अलग हैं—जैसे 'ड्रेसिंग गाउन', 'वाथरोब', 'हाउसकोट', 'पिजामा', 'नाइटगाउन' आदि। यहां दिक्कत यह होगी कि जापानी शब्द 'यूकाता' के लिए कौन-सा अंग्रेजी शब्द रखा जाए। जापानी में एक वाक्य आता है—'वह होटल में मिला यूकाता पहने था' तो अंग्रेजी में लिखेंगे—'He was wearing hotel dressing gown' या 'Hotel Bath Robe' यह वाक्य अंग्रेजी में अर्थ-सम्भावितता की दृष्टि से बड़ा अटपटा और कमजोर दृष्टिगत होगा। यह समस्या सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्नतावाली भाषाओं में सर्वाधिक होती है किन्तु जो भाषाएं सांस्कृतिक दृष्टि से समानता रखती हैं जैसे हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि, उन भाषाओं में यह समस्या प्रायः नहीं होती है।

अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की दो प्रकार की संरचनाएं होती हैं—सांस्कृतिक संरचना और भाषिक संरचना। दोनों ही संरचनाएं एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। यदि भाषा को लिखित या मौलिक घटनाओं की एक शृंखला कहा जाए जो अर्थ-वहन करती है, तो अनुवाद की समस्या स्रोत-भाषा की घटनाओं और लक्ष्य-भाषा की घटनाओं के बीच अर्थ-समकक्षों पर पहुंचने की होगी। इस प्रक्रिया में अनुवादक को तो आधारभूत संरचनाओं—भाषिक और सांस्कृतिक—पर कार्य करना पड़ता है।

भाषिक अनुवादता विशेष रूप से उन स्थानों पर आती है, जब स्रोत-भाषा में रूपकात्मक, मिथिकल और आलंकारिक प्रयोगों की भरमार हो जाती है। ऐसी स्थिति में लक्ष्य-भाषा में उनके समकक्षों का खोजना टेढ़ी खीर हो जाता है। लेकिन यह समस्या मूलतः साहित्यिक अनुवाद (उसमें भी नाटक तथा काव्य के अनुवाद) की समस्या है। स्रोत-भाषा में श्लिष्ट, रूपकात्मक-आलंकारिक प्रयोगों की भरमार के कारण प्रायः लक्ष्य-भाषा में अनुवाद अस्पष्ट होकर अर्थ की अमूर्तता की ओर बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए 'सुवरन को खोजत फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर', जैसी काव्य-पंक्तियों को लिया जा सकता है। इस काव्य-पंक्ति में 'सुवरन' का अनुवाद-शब्द श्लेष के कारण चक्कर में डालता है। दूसरी भाषा में इसका अनुवाद करते ही कवि के अर्थ और अभिप्रेत का सम्पूर्ण चमत्कार ठण्डा हो जाता है।

इसी प्रकार की समस्या अनेकार्थी वाक्यों या शब्दों के आने पर उत्पन्न होती

है। स्रोत-भाषा के इन अनेकार्थियों को लक्ष्य-भाषा के मूल सन्दर्भ में लाकर ढालना कठिन होता है जैसे 'रस' शब्द की घोर पारिभाषिकता अनुवाद के लिए चुनौतीपूर्ण है। भारतीय काव्य-शास्त्र के अतिरिक्त भी इस शब्द का प्रयोग आयुर्वेद का रस, पदार्थ का रस आदि अनेक रूपों में होता है। सामान्य भाषा में भी रस शब्द पाक-रस आदि के लिए खूब चलता है। ऐसा ही एक शब्द है 'धर्म'। जिसका पर्याय केवल 'Religion' नहीं होता। यह शब्द 'कर्त्तव्य' तथा 'मानवीयता' के अर्थ में ज्यादातर प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार वर्ड्सवर्थ की एक प्रख्यात पंक्ति को लिया जा सकता है—'The child is father of the Man' इस वाक्य में इतने अर्थ-सन्दर्भ गर्भित हैं कि इसका अनुवाद हो ही नहीं पाता—'बच्चा आदमी का पिता है' कहते ही इस शब्द की दार्शनिकता, अर्थक्षमता आदि सब कुछ समाप्त-प्राय होने लगती है। मूल पंक्ति जितनी अपने में बृहत्तर अर्थ-अनुपंगों को रखने के कारण व्यापक दिखाई देती है उसका अनुवाद उतना ही 'छोटा' और 'सीमित' अर्थवाला दृष्टिगत होने लगता है।

मिथक प्रत्येक देश में एक खास ढंग से उत्पन्न होते रहते हैं, किसी भी जाति का जातीय अवचेतन इन्हीं में युगों-युगों तक यात्रारत रहता है। देशबद्ध इन मिथकों का अनुवाद बहुत कठिन काम है। इसका प्रधान कारण यही है कि मिथक का एक विशिष्टतावाची लोक-सन्दर्भ होता है जैसे मीराबाई के काव्य में 'गिरधर' का प्रयोग। उनकी पंक्ति है—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।' मीरा की इस पंक्ति का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करते समय 'गिरधर' को लिप्यंतरित भी कर लिया जाए तो पूरे अर्थ का वहन नहीं हो सकता क्योंकि शब्दों के पर्याय एक-से नहीं होते हैं, हर पर्याय का अलग अर्थ-सन्दर्भ होता है। 'गिरधर' के पर्याय 'नन्दनन्दन', 'वामुदेव', 'मुरारी', 'राधा-वल्लभ', 'मुरली मनोहर', 'गोविन्द' आदि नहीं हैं, न वे अनुवाद में सहायता ही दे सकते हैं। 'गिरधर' में इन्द्र-कृष्ण संघर्ष का सम्पूर्ण मिथ निहित है। इन्द्र को हराकर कृष्ण ने ब्रजवासियों की रक्षा की और अपना लोक-रक्षक रूप जनता में स्थापित किया। हर दुर्बल-असहाय व्यक्ति के लिए विपत्ति के समय में यह भगवान का 'रक्षक' रूप है। विपत्तिग्रस्त मीरा की रक्षा 'गिरधर' ही कर सकता है—'मुरली मनोहर' या 'कुंज-बिहारी' नहीं। ऐसी स्थिति में 'गिरधर' जैसे मिथिकल-सन्दर्भों के अनुवाद में अनुवादक के गहन ज्ञान और पकड़ की परीक्षा हो जाती है। ऐसे में टिप्पणी देने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता। गहराई से सोचें तो यह समस्या देश-विदेश के साहित्यिक अनुवाद की सर्वाधिक प्रधान समस्या है। अतः अनुवादक को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के साथ मिथिकल प्रसंगों-सन्दर्भों की सही जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

अनुवाद की समस्या का एक पहलू शब्द-समुच्चय से जुड़ा है। प्रत्येक भाषा

का शब्द-समुच्चय एक विशिष्ट समुच्चय होता है। इस शब्द-समुच्चय के भीतर अनेक उपसमुच्चय होते हैं। इन उपसमुच्चयों का निर्धारण सम्बन्ध भाषा की संरचना में उन शब्दों की स्थिति तथा प्रकार्य के आधार पर किया जाता है। अतएव एक भाषा के शब्द-समुच्चयों से जैसे उपसमुच्चय बनेंगे वैसे दूसरी भाषा के शब्द समुच्चयों से नहीं।

अनुवाद क्यों ?

आज विश्व-भर में अनुवाद की आवश्यकता को तीव्रता से महसूस किया जा रहा है। विज्ञान, टेक्नालॉजी, कला-साहित्य-संस्कृति, दर्शन, राजनीति, समाज-शास्त्र, वनस्पति विज्ञान आदि ज्ञान की तमाम शाखाओं-प्रशाखाओं में हो रहे एक देश के कार्य को दूसरे देश तक पहुंचाने में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अनुवाद के द्वारा एक देश अन्य देशों के विचारों, कार्यों, सांस्कृतिक-राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक हलचलों, अनुभवों, प्रयोगों और अनुसन्धानों से तो गहन से गहनतर सम्पर्क स्थापित करता ही है, साथ-ही-साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को निकट लाने और बढ़ाने में भी सेतु का काम करता है। मानव की समस्त सांस्कृतिक प्रगति, ज्ञान-माध्यमों के प्राचुर्य और संचार-साधनों में द्रुतगति के परिणामस्वरूप आज विचारों, तकनीकों और महत्त्वपूर्ण समाचारों, अनुबन्धों के परस्पर विनिमय की गति भी तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। प्रतिदिन मानव नये से नये ज्ञान-क्षेत्रों के कपाट खोल रहा है। ऐसी स्थिति में अनुवाद-कार्य की आवश्यकता और महत्ता असन्दिग्ध है।

प्रत्येक देश एवं जाति की अपनी निजी सांस्कृतिक विरासत एवं जीवन-दृष्टि होती है। संघर्षों से जूझकर कमाये गए जीवन-मूल्य होते हैं। सांस्कृतिक-ऐतिहासिक, सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक-धार्मिक, नैतिक विकास की विशिष्ट ढंग की विशिष्टताएं होती हैं। प्रायः इन विशिष्टताओं में ही जाति की सम्पूर्ण अन्तर्मानसिकता निहित होती है। यह अन्तर्मानसिकता ऐतिहासिक पीठिका की अनवरतता और काल-चक्र से जुड़ी होती है। विभिन्न देशों के और कालों के भावों, विचारों, संकल्पनाओं, प्रत्ययों और कृत्यों में मानव का सम्पूर्ण बौद्धिक एवं कार्यात्मक-ज्ञानात्मक भण्डार अनुवाद के माध्यम से मुक्त विचार-विनिमय व्यापार में प्रवृत्त होता है।

मानव के पास आयु, समय और साधन की एक सीमा रहती है। हर व्यक्ति संसार की प्रत्येक भाषा नहीं सीख सकता। ऐसी स्थिति में अनुवादक ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम सभी भाषाओं से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। युगों से अनुवादक अपना यह विशिष्ट ढंग का कार्य करता चला आ रहा है। इस प्रकार

सभ्यता के विकास में वह सृजनात्मक योगदान देता रहा है। अनुवादक के इस उदात्त एवं निष्ठापूर्ण कार्य के अभाव में विभिन्न देश और संस्कृतियाँ किसी द्वीप से अधिक न रही होतीं, जो अपने आप में तो शायद बहुत सुन्दर होतीं, क्योंकि अलग-अलग इकाइयों के रूप में पड़ी रही होतीं पर उनके निवासी सम्पूर्ण विश्व से अलग-थलग पड़ गए होते और विस्तृत ज्ञान-क्षेत्र से उनका जीवन्त सम्पर्क कट गया होता। इसके साथ ही विस्तृत ज्ञान से वंचित हो जाने के कारण वे सदैव के लिए अपनी मानसिक और भौतिक सीमाओं में जकड़े रहकर कूपमण्डूक बन गए होते। संसार की तमाम ज्ञान-वायु फेंकने वाली खिड़कियाँ उन तक खुल ही नहीं पातीं। मानव का यह अपूर्ण विकास बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण हुआ होता।

आज विश्व-भर में ज्ञान का पुराना समाजशास्त्र बड़ी तेजी से बदलाव ले रहा है। पुरानी दुनिया के स्थान पर एक नया चेहरा जन्म लेने की कोशिश कर रहा है। विज्ञान के नये अनुसन्धानों और आविष्कारों के क्षेत्र में इस ढंग के परिवर्तन इस शताब्दी में बहुत हुए हैं। कुछ देश तो विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गए हैं और शेष पिछड़े रहे हैं। इन पिछड़े देशों में विकसित देशों के ज्ञान-विज्ञान को फौरन पहुंचाने की आवश्यकता है और यह काम अनुवादक ही सही ढंग से पूरा कर सकता है या ज्ञान-विज्ञान की सम्पूर्ण जानकारी उन तक पहुंचा सकता है।

गहराई से विचार करने पर यह बात स्पष्ट होने लगती है कि अनुवाद अर्जित-उपाजित ज्ञान की निरन्तरता बनाये रखने वाला भाषा-दर्शन है। यह प्राचीन ज्ञान को नये युग में ढोकर लाता है। इस प्रकार हम अपनी परम्परा से सीधे साक्षात्कार करते हैं और परम्परा के संग्रह-त्याग की विवेक-भावना को भी विकसित-परिष्कृत करते हैं। इस दृष्टि से अनुवाद परम्परा का नवीनीकरण है जिसे परम्परा की आधुनिकता का कार्य भी कहा जा सकता है।

अनुवाद-प्रक्रिया में देश एवं जाति की आत्मसजगता, स्वचेतनता एवं आत्म-विस्तार का भाव निहित रहता है। एक ओर तो जो हमारे पास नहीं है, उसे ग्रहण करने की बलवती इच्छा रहती है और दूसरी ओर जो हमारे पास अपनी भाषा और संस्कृति में विद्यमान है, उसे ज्यादा-से-ज्यादा दूर तक फैलाने और प्रसारित करने की आकांक्षा। उदाहरणस्वरूप यूरोप के नवजागरण काल (Renaiassance) को देखा जा सकता है। नवजागरण काल में इटली के विद्वान ग्रीक भाषा और संस्कृति की विपुल ज्ञान-राशि को श्रम से अपनी भाषा में अनूदित करके लाए। फिर फ्रांस और जर्मनी होते हुए सम्पूर्ण यूरोप में ज्ञान के प्रति उत्कट लालसा की लहर फैल गई और यूरोप के हर देश में इटली के ज्ञान को लाने-पाने की धूम मच गई। सम्पूर्ण यूरोप मध्यकालीन अंधकार और अज्ञानता से उबरकर नये ज्ञान के प्रकाश में दीप्त हो उठा। यूरोप में नवजागरण काल के भीतर ही अनुवाद की बड़ी भूमिका रही है। इस प्रकार आने वाली पीढ़ियों के लाभार्थ पुनर्जागरण काल में सम्पूर्ण ग्रीक-

साहित्य और ज्ञान-विज्ञान लैटिन फिर अन्य योरोपीय भाषा में अनूदित किया गया। यही स्थिति भारतीय नवजागरण की रही है। 19वीं सदी में देश-विदेश के समस्त नए-पुराने ज्ञान-विज्ञान को आधुनिक भारतीय भाषाओं में ले आने की बलवती स्पृहा रही है।

हमारे आस-पास जो घटित हो चुका है, या घटित हो रहा है, उसके प्रति जागरूकता का परिणाम है—अनुवाद कार्य। हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग आधुनिकता का प्रवेश-द्वार इसलिए कहा जाता है कि भारतेन्दु बाबू ने अपने ऐतिहासिक बोध को सही दिशा-द्वार दिया और युगीन आवश्यकताओं को समझते हुए पाश्चात्य साहित्य से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। एक ओर तो वे संस्कृत नाटकों के हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत कर रहे थे, दूसरी ओर महान् कलाकार शेक्सपियर के नाटकों के हिन्दी अनुवाद में सक्रिय रहे। परिणामस्वरूप 'त्रासदी' 'कामदी' आदि नये नाट्य-रूपों से हिन्दी-साहित्य को परिचित कराया। पुराने हिन्दी काव्य-शास्त्र को झटका देकर नवीनीकरण की ओर प्रवृत्त किया। ऐसा करते हुए उन्होंने जिस जागरूकता का परिचय दिया उसका नितान्त अभाव अपने परिवेश के प्रति उदासीन रीतिकालीन कवियों में देखा जा सकता है। भारतेन्दु के इस प्रयास से तत्कालीन लेखकों को दिशा और दृष्टि मिली है। पं० जगन्नाथदास रत्नाकर ने पोप के निबन्ध का 'समालोचनादर्श' नाम से बरवै छन्द में अनुवाद किया। इस प्रकार अनुवाद कार्य की इस युग में धूम मच गयी। इस तथ्य से आज कौन प्रबुद्ध व्यक्ति असहमति व्यक्त कर सकता है कि इन जागरूक रचनाकारों ने नया युग ही ला दिया।

इस प्रकार अनुवाद की स्वभाषा और स्वसंस्कृति के प्रति निष्ठा उसे अत्यन्त गुरु-गंभीर दायित्व में डाल देती है। जो अन्य भाषाओं में है, उसे अपनी भाषा में ले आने तथा जो अपनी भाषा में है उसे अन्य भाषाओं को मुक्तहस्त से देने और प्रसारित करने की लालसा अनुवादक की आत्म-सजगता का प्रतीक है, आत्म-विस्तार का प्रतीक है, परतन्त्रता से मुक्ति की कामना का प्रतीक है, स्वभाषा-विस्तार और स्वभाषा में चिन्तन की आकांक्षा का प्रतीक है।

जहां एक ओर अनुवाद से भाषा का विस्तार होता है वहां दूसरी ओर उसका स्रोत-भाषा (Source language) की अनुगामिनी बन जाने का खतरा भी रहता है। यह खतरा हिन्दी में आज महसूस किया जा रहा है, किन्तु यह खतरा अपने आप में आत्यन्तिक नहीं है। इसकी सम्भावना तभी होती है, जब हम अपनी भाषा में सोचना बन्द कर देते हैं और दूसरी भाषा के समानार्थक शब्दों (Equivalents) को खोजने और गढ़ने में ही अपनी शक्ति लगा देते हैं। समकक्ष शब्द न मिल पाने पर यह मान लेते हैं कि भाषा में अमुक या उस भाव को व्यक्त करने की क्षमता ही नहीं है। किन्तु कोई भी भाषा इतनी दरिद्र नहीं होती कि अपने

बोलने-सोचने वाले के भावों-विचारों, भांगिमाओं और अभिव्यक्तियों को वहन करने में अक्षम हो। प्रश्न तो यह उठता है कि हम भाषा से कितना मांगते हैं। हम जिस भाव से भाषा से जितना मांगते हैं, वह उतना ही देती है। संस्कृत में इसीलिए वाणी को 'कामधेनु' कहा गया है और कवि अज्ञेय उसे 'कल्पवृक्ष' कहते हैं।

सच तो यह है कि अनुवाद के माध्यम से भाषा समृद्ध होती है। नये भावों, नये विषयों, नये विचारों और नयी अभिव्यक्ति-पद्धतियों को व्यक्त करने के प्रयत्न से भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता का विस्तार होता है, उसका शब्द-भण्डार विस्तृत होता है। नये-नये विषयों का समावेश होने पर उनके समकक्ष खोजे जाते हैं, नये शब्द निर्मित (Coin) किए जाते हैं तथा अन्य भाषाओं के शब्द ज्यों के त्यों या थोड़े-बहुत हेर-फेर या परिवर्तन के साथ ग्रहण कर लिये जाते हैं। जैसे अंग्रेजी 'Hour' के लिए हिन्दी में 'घण्टा' हमारे पास मौजूद था, और 'Minute' को हमने 'मिनट' के रूप में ज्यों का त्यों ले लिया 'Tragedy' और 'Comedy' के लिए हमने क्रमशः 'त्रासदी' और 'कामदी' रखा।

तकनीकी प्रगति एक दुधारी तलवार है। परमाणु-ऊर्जा, राकेट, दूरदर्शन आदि विश्व-शान्ति एवं कल्याण के माध्यम भी हो सकते हैं और युद्ध के अस्त्र भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कौन नियन्ता है और कौन नियन्त्रित। शक्ति से पूर्ण कठोर व्यक्ति या मानवीय विचारों और कार्यों में संलग्न व्यक्ति अनुवादक को उन लोगों की श्रेणी में रखते हैं जो विचारों को भाषा के रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण देते हैं। साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों, विचारकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों के कार्यों-विचारों को अपने देश की भाषा में अन्तरित करते हैं। विश्व साहित्य के सृजन में योगदान देते हैं और किसी हद तक अनुवाद की भूमिका से विचारों को जगाते हैं।

अनुवादक का स्थान साहित्य के सर्जक की भांति है, जिसकी सहायता के बिना व्यापक मानवीय संस्कृति की परिकल्पना ही सम्भव नहीं होती है। इस बात पर जोर देने की अपेक्षा नहीं है कि वैज्ञानिक और पाण्डित्यपूर्ण कृतियों के अनुवादक व्याख्याकार, कोशकार तथा भाषाविद् सभी साहित्यिक अनुवादों के सहयोगी हैं। विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रों के माध्यम से हमारे उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करते हैं। क्योंकि सभी का एक ही निर्दिष्ट लक्ष्य है।

आज वैज्ञानिक जानकारी ही सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रयोगों का आदि और अन्त है। उसका तुरन्त प्रचार ही ठोस अनुसंधान का पूरक है। दोनों ही प्रभावपूर्ण अनुसंधान के अनिवार्य अवयव हैं। इस प्रकार अनुवादक सम्पूर्ण अनुसंधान-प्रक्रिया के दुर्निवार अंग हैं। उन्हें व्यक्तिगत तौर पर लगातार अपने-अपने व्यवसाय-सम्बन्धी प्रत्ययों के विस्तार के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ताकि वे

आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नॉलाजी की आवश्यकताओं की गति के साथ-साथ आगे बढ़ सकें तथा उसका पूरा साथ दे सकें ।

दिन-प्रतिदिन आधुनिक संस्सार में एक बड़ी आवश्यकता यह भी दृष्टिगत होने लगी है कि हमें दुनिया की क्लासिक पद्धतियों-प्रविधियों की प्रामाणिक जानकारी हो । आरम्भ में तो कुछ लोग क्लासिकों की जानकारी से डरते थे कि वे हमारे ऊपर 'हावी' न हो जाएं और ऐसी स्थिति में उनके अनुकरण से हमारी मौलिकता ही खतरे में न पड़ जाए । किन्तु आज इस 'मिथ' का खण्डन हो गया है और क्लासिकों तथा क्लासिक चीजों की जानकारी का महत्त्व बढ़ रहा है । यह भी ध्यान से सोचें तो अनुवाद के द्वारा ही ज्यादा बेहतर हो सकता है ।

अनुवाद के प्रति सजगता बौद्धिक जागरूकता का प्रतीक है । हमारे यहां तो बड़ा दुर्भाग्य यह भी रहा है कि हमने अनुवाद और अनुवादक को ठीक से महत्त्व नहीं दिया । उसके महत्त्वपूर्ण कार्य को समझने में भी प्रायः भूल होती रही है । अनुवाद-कार्य को सदैव दूसरी श्रेणी का कार्य समझा-समझाया गया । जिसका सर्वाधिक बुरा परिणाम तो यही हुआ है कि अनुवादक का मनोबल गिरा है । विषय के जानकारों में इस कार्य के प्रति थोड़ी-बहुत हिचक रही है और श्रेष्ठ प्रतिभाओं के संपर्क से अनुवाद-कला काफी समय तक वंचित रही है । विचार-आंदोलनों, ज्ञान की प्रवृत्तियों में आज विश्वभर में अन्तर्विद्याश्रयी सम्बन्धों को लाने की आवश्यकता और समस्या है । जिसके लिए अनुवाद से समर्थ माध्यम अभी मानव के पास शायद दूसरा नहीं है ।

आधुनिक संसार में तुलनात्मक अध्ययन के लिए अनुवाद की आवश्यकता से कौन इनकार कर सकता है । दो भाषाओं के साहित्य, विचारों तथा भाषा-शास्त्र सम्बन्धी तुलना से मानव-मनोविज्ञान के अनेक अज्ञात तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया जा सकता है क्योंकि अलग-अलग अनुशासनों में कार्य करता हुआ भी मानव-मन एक है ।

किसी भी विदेशी भाषा का अध्ययन तो हम अनुवाद के माध्यम से ही कर सकते हैं । यदि यह माध्यम न हो तो मानव-सेतु ही टूटने की प्रक्रिया में दृष्टिगत हो । इस प्रकार विदेशी भाषा की बुनियादी शिक्षा आरम्भ में अनुवाद के माध्यम से ही दी जाती है और उसी के द्वारा हम फ्रेंच, चीनी, रूसी, जर्मन आदि भाषाओं को सीखते हैं, उन भाषाओं के भाषा-विज्ञान, भाषा-शास्त्र एवं साहित्य से परिचय स्थापित कर पाते हैं । आज के विश्व में अनुवाद की केन्द्रीय स्थिति है । विश्व-विद्यालयों में विदेशी भाषा-विभाग खुल जाने से इस स्थिति में और भी शक्ति पैदा हुई है ।

आज यह कहना सम्भव है कि ज्ञान के गणतन्त्र के नागरिकों के बीच अनुवादक विश्व नागरिक की हैसियत रखते हैं । उनकी अनुपस्थिति या अत्यधिक सीमित

उपस्थिति का तात्पर्य होगा—विज्ञान परम्परा एक स्वनिर्मित कटघरे में घिर जाएगी। उसे इस कटघरे से बाहर निकालने से वंचित रखने पर सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान परम्परा एक धीमी श्रान्ति या अपनी ही ऊब के कारण समाप्त हो जाएगी। विशेष रूप से आधुनिक युग में जहां विश्व-साहित्य अनुवादकों की गुणवत्ता के माध्यम से पुनर्जीवन या नवीन जीवन की शक्ति को प्रदर्शित करता है। कभी-कभार तो यह केवल उन्हीं के प्रयत्नों के कारण जीवित रह पाता है। हम सभी भली-भांति जानते हैं कि कोई भी संस्कृति तब तक जीवित रहती है जब तक वह परिवर्तन की चुनौती को भली-भांति स्वीकार करती है।

□ □



